Chapter-4

अध्याय - 4.

नवजागरण और प्रेमचंद

नवजागरण और प्रेमचंद

1. नवजागरण और प्रेमचन्द की कहानियाँ

2. नवजागरण से सम्बन्धित प्रेमचंद की कहानियाँ

3. प्रेमचन्द की कहानियों की भाषा-शैली

1. नवजागरण और प्रेमचंद की कहानियाँ

अंग्रेजों के भारत पर आधिपत्य ने भारतीयों के प्रमोद और जड़ता को तोड़ दिया। उन्होंने गुलामी की छटपटाहट को अनुभव किया और देश को आजाद कराने के लिए करवट बदली। परिणाम स्वरूप जीवन संघर्ष बढ़ा और साथ ही साथ जातीय जीवन की भी जागृति हुई। भारतवासी संगठित होकर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। तभी से नवजागरण की शुरुआत हुई मानी जाती हे। सही मायने मे 1857 के गदर के बाद ही भारत में नवजागरण की शुरुआत हुई। नवजागरण के उद्‌भव एवं विकास की चर्चा अध्याय - 1 में काफी विस्तृत से हुई है, जिसका हमने अध्ययन किया है। भारतवासियों में नवजागृति का संचय होने के बावजूद कई परिवर्तन आए। यह परिवर्तन किन्हीं एक क्षेत्र में नहीं बल्कि समाज के हर क्षेत्र में आया, चाहे वह क्षेत्र धार्मिक, राजनैतिक या फिर सामाजिक ही क्यों न हो ?

आर्थिक क्षेत्र :----

आर्थिक क्षेत्र के अन्तर्गत खेती में सुधार हुआ। जो पहले हल एवं अन्य उपकरणों से खेती होती थी वहाँ आज नये उपकरणों एवं पद्धतियों का इस्तेमाल होने लगा है, आधुनिक वाहन व्यवहार का विकास हुआ। रेल्वे बस व्यवहार आदि की शुरुआत हो गई। जिससे उद्योग धंधे को काफी फायदा हुआ और माल का आयात- निर्यात होने लगा। आधुनिक उद्योगों का विकास होने लगा। वाहन व्यवहार तथा संदेश व्यवहार ने आधुनिक उद्योगों के विकास में काफी योगदान किया। जिसकी वजह से आर्थिक क्षेत्र में प्रगति हुई। उसमें प्रेस तथा पत्रव्यवहार, डाक, तार और टेलीफोन ने ' सोने में सुहागा ' का कार्य किया।

सामाजिक क्षेत्र

सामाजिक क्षेत्र में लोगों में जागृति लाने के लिए कई संस्थाओं की स्थापना हुई जैसे ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, रामकृष्ण-मिशन, थियोसॉफिकल सोसायटी, वेद समाज आदि मुख्य हैं। जिन्होंने समाज में चल रही कुरीतियों जैसे कि सती प्रथा, बाल-विवाह, बालकी को दूध पीती करने का रिवाज, विधवा-विवाह, ऊँच-नीच के भेद-भाव, नारी स्वतंत्रता, नारी-अधिकार, नारी-शिक्षा, नारी उद्धार का विरोध आदि समाज की संकीर्णताओं का विरोध, परम्परावादिता का विरोध आदि समाज की अनेक कुरीतियों का विरोध करके समाज में सुधार लाने का प्रयास किया गया जिसके परिणाम स्वरूप नवजागरण का फैलाव हुआ।

धार्मिक क्षेत्र:---

धार्मिक क्षेत्र में कई परिवर्तन आए जैसे एकेश्वरवाद का प्रतिपादन और बहुदेववाद का खण्डन, मूर्तिपूजा और बालप्रथा का विरोध, परम्पराओं के अन्धानुकरण का विरोध, धार्मिक सहिष्णुता का प्रतिपादन

आदि। इसकी वजह से लोगों की सोच में परिचर्तन आया। छुआछूत जैसा अब कुछ समाज में नहीं रहा। लोगों की सोच में यह परिवर्तन नवजागरण की देन है।

राजनीतिक क्षेत्र:-—

इस क्षेत्र में कई परिवर्तन आए जैसे सेना का आधुनिकीकरण हुआ, वहीवटी तंत्र की पुन: व्यवस्था की गई। नवजागरण की वजह से भारत को आजादी प्राप्त हो सकी।

शैक्षणिक क्षेत्र:----

शैक्षणिक क्षेत्र में भी नवजागरण की वजह से परिवर्तन आया जैसे स्त्री शिक्षा की शुरुआत होना, विदेश में पढ़ाई करने के उद्देश्य से लोगों का जाना, शिक्षण की तरफ लोंगों का जागरूक होना आदि। नवजागरण ने देश के हरेक कोने में लोगों की सोच में गहरा प्रभाव डाला और लोगों की सोच में परिवर्तन भी आया। साहित्य भी इस परिवर्तन से अछूता नहीं रहा। जहॉ पहले श्रृंगारिकता, भोग, विलास के पदों के माध्यम से साहित्य की रचना की जाती थी, वहॉ 1857 के गदर के बाद नवजागरण की शुरुआत होने पर ही भारतेन्दु का आगमन हुआ, जिन्होंने 'नरेश युग' का अन्त करके 'जनयुग' की शुरुआत की। उनकी 'भारत दुर्दशा' नवीन युगीन भारत को लेकर चलती थी और तभी से हिन्दी साहित्य में नवजागरण देखने को मिलता है। ब्रजभाषा तथा अवधी को छोड़कर साहित्य अब खड़ीबोली में लिखा जाने लगा जो अब जनभाषा बन चुकी थी। नवजागरण की वजह से यह परिवर्तन मुमकीन हुआ और यह परिवर्तन हिन्दी साहित्य का सबसे बड़ा एवं महत्वपूर्ण परिवर्तन है क्योकि यही भाषा जनभाषा होने की वजह से अब साहित्य को आम् जनता भी आसानी से पढ़ सकने लगी एवं लेखकों के संदेश एवं उद्देश्य को अच्छी तरह से आत्मसात करने लगी। आजादी प्राप्त करने में यह ब्रहुत बड़ी जरूरत भी थी कि लोग देश में हो रहे कार्यों को समझे और उसमें भाग लें, जिसे साहित्यकारों व लेखकों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से पूरा किया।

इसी समय हिन्दी में गद्य का विकास हुआ तथा गद्य की विभिन्न विधाओं जैसे कि कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध, समालोचना, संस्मरण, रिपोतार्ज, आत्मकथा तथा जीवनी आदि का प्रादुर्भाव हुआ। यहॉ पर मेरा मुख्य विषय कहानी है, बाकी विधाओं के बारे में अध्याय -2 के बिन्दु -4 के अन्तर्गत विस्तार से चर्चा की गई है। भारतेन्दु काल के मुख्य लेखकों में प्रतापनारायण मिश्र, पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. बदरी नारायण चौधरी' प्रेमधन', पं. अंबिकादत्त व्यास, पं.. राधाचरण गोस्वामी, बालमुकुन्द गुप्त आदि का नाम अग्रगण्य है। भारतेन्दु युग में कहानियों का उतना विकास नहीं हुआ जितना प्रेमचन्द युग में हुआ। इसी सन्दर्भ में डॉ. इन्द्रनाथ मदान लिखते हैं कि--"उन्होंने कहानी का बिल्कुल नया रूप दिया। वे पहले व्यक्ति

थे जो सामग्री के लिए गॉवों की ओर गये और जिन्होंने सीधे-सादे ग्रामीणों के घटनाहीन जीवन को अपनी कहानियों का विषय बनाया। उन्होंने इन सीधे-सादे धरती पुत्रों, क्लर्को और व्यापारियों के मामूली मुंशियों के मन की हलचल को व्यक्त किया। वे उनके संघर्षों, प्रलोभनों और उनकी आशाओं और आशंकाओं, उनकी सहज धार्मिकता और अन्धविश्वासों से भली-भॉति परिचित थे। किसान का मन उनके लिए खुली हुई पुस्तक के समान था।'' 1 रचनाकार के रूप में प्रेमचन्द एक समर्पित जन पक्षधर रचनाकार रहे हैं। हमारी सामाजिक संरचना में जो सबसे ज्यादा यातनाग्रस्त है उनमें सबसे अधिक प्रेमचंदजी हैं, वे किसान हों, स्त्री हो, दलित हो या अन्य साधारण जन हो। आभिजात्य के प्रति उनके मन में सदैव एक तीखी विरक्ति का भाव रहा है। उनके अपने जीवनगत अनुभवों ने भी समाज में विद्यमान आभिजन और जन की ऐसी पहचान कराई है कि जन के पक्ष से आभिजात्य पर चोट करतें दिखलाई देते है। उनकी कहानियॉं और उपन्यास के अविस्मरणीय चरित्र हमें उन्हीं वर्गों से मिले हें जो साधारण जन के वर्ग है।

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में उन्हीं समस्याओं का निरूपण किया है जो उस समय की सबसे बड़ी समस्या थी। समाज में चल रही कुरीतियों पर भी उन्होंने कुठाराघात किया है जैसे कि **अछूत समस्या** पर आधारित कहानी ठाकुर का कुँआ, सद्गति, मंत्र, सौभाग्य के कोड़े, गिल्ली डंडा, मंदिर, घासवाली इत्यादि कहानियों के माध्यम से प्रेमचन्द ने सदियों से चली आ रही परम्पराओं छुआछूत आदि का विरोध किया है तथा लोगों की सोच को दूर करने के लिए अपनी कहानियों को माध्यम बनाया है। समाज के जो रूढ़िगत बंधंन थे उन्हें बदलना जरूरी है, उन परम्पराओं, नियमों आदि का खण्डन प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के माध्यम से किया है। साथ ही साथ नए विचार, सच और झूठ का फर्क, अन्ध विश्वास को दूर करके लोगों मे नवजागृती लाना चाहतें हैं। मनुष्य में आदर्श की स्थापना करने के लिए उन्होंने ' पंचपरमेश्वर' कहानी लिखी है। जबकि ईमानदारी का पाठ पढ़ाने के लिए ' नमक का दरोगा' और संयुक्त परिवार की मर्यादा प्रतिष्ठा रखने के लिए ' बड़े घर की बेटी' की रचना की। ' कफन' तो अत्याधुनिक कहानी है, क्योकि इसमें तो सभी पुराने संस्कार, धार्मिक रूढ़ियॉं और संवेदनाओं का बना बनाय ढॉचा टूटकर चकनाचूर हो गया है। जिसके माध्यम से प्रेमचन्द लोगों में जागृतता लाना चाहते हैं कि अब जमाना बदल रहा है और हमें जमाने को साथ में लेकर चलना पड़ेगा इन रूढ़िगत परम्पराओं को छोड़ना बहुत जरूरी है। उनकी दलित विमर्श पर आधारित मुख्य कहानियों में दूध का दाम, खून सफेद, गरीब की हाय, विध्वंस, सवा सेर गेहूँ, पूस की रात, दण्ड, बाबाजी का भोग, शूद्रा, आगा-पीछा, लांछन, बौड़म, आदि हैं।

बालमनोविज्ञान पर आधारित कहानियों में ईदगाह प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। जिसमें लेखक ने दिखाया है कि गरीबों के लिए ईद या दिवाली खुशियों से ज्यादा गम लेकर आती है तथा एक बच्चे के

मनोभाव को व्यक्त किया है। प्रेमचंद ने नारी-विर्मश पर कई कहानियॉ लिखी हैं, जिसमें उन्होंने नारी पर होने वाले अत्याचार, शोषण को दर्शाया है। इस प्रकार की कहानियों में विक्रमादित्य का तेगा, पाप का अग्निकुंड, रानी सारंधा, सौत, बेटी का धन, मर्यादा की बेटी, उद्धार, नरक का मार्ग, सती-1, माता का हृदय, अग्नि समाधि, दो सखियॉ, आगा-पीछा, सोहाग का शव आदि मुख्य हैं।

प्रेमचंद ने साहित्य में प्रवेश लगभग उसी समय किया जब राजनीति में गांधीजी ने प्रवेश किया था। प्रेमचन्द को आर्दशोन्मुख यथार्थवादी कथाकार, गॉधीवादी, समाज सुधारक आदि कहकर यही प्रकट किया जाता है कि वे गांधीवाद से प्रभावित होकर और उनके सिद्धांतों के अनुसार रचना करने वाले कथाकार थे। गॉधीजी से प्रभावित होकर उन्होंने कई राष्ट्रप्रेम संबंधित कहॅानियॉ लिखी हैं - जिसमें सांसरिक प्रेम और देश-प्रेम, आल्हा, यह मेरी मातृभूमि है, मृत्यु के पीछे, सुहाग की साड़ी, राजभक्त, जुलूस, पत्नी से पति, शराब की दुकान, आहुति, जेल, आदि मुख्य है। प्रेमचंद ने समाज के हरेक पहलू को लेकर कहानी की रचना की है तथा उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से लोगों को समाज के कुरीति- रिवाज, तथा जीवन की कठोर वास्तविकता, महाजनों के निष्ठुर पंजों से मुक्ति की छटपटाहट के लिए किसानों का विद्रोह, नौकरी पेशा, मध्यम वर्ग का अल्पवेतन, अंध संस्कार, अछूतों की दरिद्रता-ताड़ना, क्रांतिकारी देशभक्तों का उबलता आक्रोश, मानवीय विश्वासों के विरुद्ध धर्म के नाम पर ढोंग, न्याय के नाम पर नीति कुशल घूसखोर, विचारकों के कुचक्र, विदेशी शासन के दोष आदि सभी प्रकार को उजागर किया है।

इन्हीं समस्याओं के आधार पर उन्होंने लोगों में नये युग के विचारों को भी प्रतिपादित किया है ताकि अपना देश तथा देशवासी पुरानी रूढ़ियों से मुक्त होकर नये भारत का निरूपण एक जुट होकर कर सके।

2 -- नवजागरण से संबंधित प्रेमचन्द की कहानियॉ

हिन्दी तथा उर्दू में अनूदित कहानियॉ

प्रेमचन्द एक प्रसिद्ध कहानीकार एवं लेखक थे। उन्होंने अपने लेखन कार्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहुलुओं को उजागर किया है और यह इसलिए मुमकिन हो पाया क्योकि वे भारतीय संस्कृति को बड़ी गहराई से जानते थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति की उस सच्चाई को उजागर किया जिसे लोग जानते हुए भी अन्जान बन रहे थे। इस बारे शिवकुमार मिश्र का मत है कि-" प्रेमचन्द जब कथा के मंच पर आये, भारत की अपनी कथा परम्परा से तो परिचित थे ही, उर्दू और अरबी-फारसी के किस्सों और अफसानों की भी उनको पूरी जानकारी थी। पश्चिम के कथा लेखकों को भी उन्होंने पढ़ा था।

बावजूद इसके उनकी रचनाएं कथा लेखन के किसी निश्चित रूप में ढलने के बजाय अभिव्यक्ति के उनके अपने दृष्टिकोण की अनुरूपता में सामने आई, कि कहानी को पारदर्शी होना चाहिए, वह सारगर्भित हो और अपने संवेदनात्मक उद्देश्य को पाठक तक भली भाँति संप्रेषित कर पाने में समर्थ हो।"2 डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद के कहानी कहने के ढंग पर विचार करते हुए लिखा है कि --"कहानी फुरसत की चीज है, काम धाम से छुट्टी पाकर सुनने की चीज है। और जल्दबाजी से काम बिगड़ जाता हैं। प्रेमचन्द कहानी सुनाते है, अक्सर लच्छेदार जबान में, वाक्यों को स्वाभाविक गति से फैलाने की आजादी देकर। अंग्रेजी बाग के माली की तरह उनकी डालियॉ और पत्ते कतर कर नहीं ; फूलों और पत्तियों को हवा में बढ़ने और लहराने की आजादी देकर। जिन्दगी के अनुभवों पर टीका-टिप्पणी भी साथ में चला करती है, व्यंग्य, अनूठी उपमाएं और हास्य बीच-बीच में पाठक को गुदगुदाते रहतें हैं। " 3

प्रेमचंद की कहानियों का क्षेत्र इतना विशद और व्यापक है, तदुपरांत उनकी कहानियों के पात्र इतने विविध एवं सच्चे हैं कि उनकी कहानियॉ तत्कालीन उत्तरी भारत विशेषत: हिन्दी भाषी क्षेत्र का प्रतिरूप बन गई। प्रेमचंद ने पश्चिम के कथा लेखकों का अध्ययन किया था इसलिए वे जानते थे कि पाश्चात्य संस्कृति कितनी आगे बढ़ गई है। हमारे देश की रूढ़िगत परम्पराओं को उन्होंने बखूबी अपनी कहानियों के माध्यम से तोड़ा है। इसी कारण हम कह सकते हे कि प्रेमचन्द में नवजागृति का संचार हो गया है। इसी नवजागरण की वजह से प्रेमचंद ने अपनी सभी कहानियों में भारत के रूढ़िगत नियमों को तोड़ने का प्रयत्न किया है। चाहे वह बाल विवाह, छुआ-छूत, नारी-विमर्श, दलित- विमर्श, या अंध विश्वास ही क्यों न हो ? उन्होंने समाज के हर पहलू को उजागर करने का प्रयत्न किया है। प्रेमचंद की कहानियों पर नवजागरण का पूर्णरूपेण प्रभाव हमें देखने को मिलता है।

प्रेमचन्द भारतीय जन मानस की स्थितयों इच्छाओं विषमताओं और आकांक्षाओं के कथाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपने युग जीवन का जितना सच्चा और यथार्थवादी चित्रण किया है उतना हिन्दी का अन्य कोई लेखक नहीं कर सका है। उनका साहित्य जन-जीवन की विविध विषमताओं, विडम्बनाओं और समस्याओं के चित्रण से भरा पड़ा है। प्रेमचंद का दृढ़ विश्वास है कि लेखक समाज का एक जागृत प्रहरी होता है। अत: उसका उत्तरदायित्व तो अपनी लेखनी के हथियार के माध्यम से समाज को सही राह दिखाना है। इसी वजह से अपने कर्तव्य का पालन करते हुए उन्होंने समाज की समस्याओं तथा गरीबों एवं शोषकों की लाचारी एवं मजबूरियों को अपने साहित्य के माध्यम से शिक्षित व्यक्तियों के सम्मुख रखा है। इसी सन्दर्भ में डॉ. एम. विमला कहते हैं कि- " प्रेमचंद अपने कथा साहित्य में सामाजिक कुरीतियों के साथ-साथ आर्थिक विपन्नता और राजनीतिक परिस्थितयों का जो चित्रण किया है, वह मानव मन तक

पहुँचकर उसे इन कुप्रथाओं का विशलेषणात्मक विचार कर अपने जीवन को रूपान्तर करने को विवश करता है। प्रेमचन्द अपनी कलम के प्रभाव से ही जीवन का परिवर्तन करना चाहते थे और यह कार्य करने में अत्यंत सफल भी हुए। प्रेमचन्द ही प्रथम कलाकार थे, जिन्होंने जीवन और समाज का सच्चा रूप संसार को प्रदान किया । '' 4

अगर हम प्रेमचन्द की कहानियों की बात करें तो उन्होंने कुल 302 कहानियॉं लिखी हैं, परन्तु इनमे तीन कहानियॉं (प्रतिज्ञा, नबीका नीति-निर्वाह, प्रतिशोध) ऐसी हैं जिनकी कथावस्तु दूसरी तीन कहानियॉं क्रमश: (रूहे-स्याह, कलुषित आत्मा) न्याय, खूनी है जैसी ही है, मात्र शीर्षक ही अलग हैं। जिसकी वजह से प्रेमचन्द की कुल 299 कहानियॉं ही होती हैं।

प्रेमचन्द की एक कहानी ऐसी है जिसका अभी तक हिन्दी में अनुवाद नहीं हुआ है। वह है **अश्के नदामत** जो अलअस्त्र मासिक में फरवरी 1917 में छपी थी।

प्रेमचंद की हिन्दी में से उर्दू में अनूदित कहानियों की संख्या 112 है। प्रेमचंद की हिन्दी में से उर्दू में अनूदित कुल 109 कहानियॉं हैं।

प्रेमचंद की वे कहानियॉं जो सिर्फ हिन्दी में ही हैं, उर्दू में अनुवाद नहीं हुआ है, उनकी संख्या 81 है।

प्रेमचन्द की तीन कहानियॉं ऐसी हैं जो तीन अलग- अलग पुस्तकों में भिन्न-भिन्न शीर्षक से छपी हैं परन्तु एक ही हैं, जो इस प्रकार हैं--

शान्ति - 1. का दूसरा नाम 'अन्तिम शान्ति' है जो नारी जीवन की कहानियॉं पुस्तक में छपी है, जिनके प्रकाशक ' हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर ' हैं।

विषम समस्या कहानी का दूसरा नाम 'समस्या' है जो प्रेमचन्द की 51 श्रेष्ठ कहानियॉं' पुस्तक में छपी है, जिनके सम्पादक- डॉ. लक्ष्मीकांत पाण्डेय हैं।

सोहाग की साड़ी कहानी का दूसरा नाम 'सोहाग का शव' है, जो प्रेमचंद और गॉंधीवाद में दर्शाया गया है, जिनके सम्पादक- रामदीन गुप्त है।

इन सभी कहानियों में से मेरे अनुसार प्रेमचंद की 38 कहानियॉं ऐसी हैं जिन्हें हम नवजागरण की कहानियॉं कह सकते हैं। इन सभी कहानियों में से हर कहानी कुछ अंश में रूढ़िगत परम्पराओं, कुरीतियों का खुलकर विरोध करती हैं। जैसे छुआछूत का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन, अनमेल विवाह का विरोध, पर्दाप्रथा का विरोध, दहेज प्रथा का विरोध, अपशकुन एवं अंधविश्वास का विरोध, संयुक्त परिवार का पक्ष, महाजनी सभ्यता का विरोध, परिवार नियोजन का पक्ष, स्वाभिमान परक कहानियॉं, राष्ट्रीय एकता पर

आधारित कहानियॉं, धर्म एवं साम्प्रदायकिता का विरोध करती या नशाबन्दी से संबंधित कहानियॉं। जिनकी चर्चा हम विस्तृत रूप से करेंगे।

छुआछूत का विरोध करती कहानियॉं

प्रेमचंद के समय में हमारे देश का सामाजिक ढांचा अंधकारमय था। लोग आपस में भेदभाव रखते थे। वैदिक काल में ऋषिमुनियों ने समाज की व्यवस्था स्थापित करने के लिए वर्णव्यवस्था की रचना की थी। जिसमें कर्मव्यवस्था के आधार पर चार वर्ण बनाए गये थे। ब्राह्मण (वे लोग जो वेदों का उच्चरण कर सके) क्षत्रिय (वे लोग देश की रक्षा कर सके) वैश्य (वे लोग जो व्यापार करें) शूद्र (वे लोग जो इन तीनों वर्णो की सेवा करें)। उस समय ब्राह्मण का बेटा ब्राह्मण या शूद्र का बेटा शूद्र ऐसा नहीं था। शूद्र का बेटा अगर अच्छा पढ़ लिख सकता है तो वह ब्राह्मण कहलाता था। वैदिक काल के बाद इस वर्णव्यवस्था में जड़ता का समावेश हो गया और इसी के साथ भारत की दुर्गति होनी शुरू हो गई। अब समाज में वर्ण के आधार पर तय न करके, उनके पूर्वजों के वर्ण यानी जाति के आधार पर तय किया जाने लगा। इसमें ब्राह्मण का बेटा ब्राह्मण, क्षत्रिय का बेटा क्षत्रिय तथा वैश्य का बेटा वैश्य और शूद्र का बेटा शूद्र कहलाने लगा। इसी के साथ साथ समाज में एक कुप्रथा प्रचलित हुई और वह थी ' छुआछूत'।

इस प्रथा ने भारतीय समाज को अन्दर से खोखला कर दिया था। ब्राह्मण अब शूद्र को नहीं छूते और न ही उनको इज्जत देते थे। अगर शूद्र की परछाईं भी ब्राह्मण के ऊपर पड़ जाती थी तो वे फिर से नहाते थे, तो फिर उनके हाथ का खाना खाने की बात तो बहुत दूर की है। किसी भी पवित्र स्थान पर उनका प्रवेश निषेध था। गॉव में उनको दूर एवं गन्दे इलाके में रहने की जगह मिलती थी। इन निम्न वर्गो के लोगों को ब्राह्मण हमेशा धर्म के नाम पर डराते थे तथा दबाते थे और निःशुल्क अपना काम निकलवाना चाहते थे। काफी लंबे समय तक यह शोषण चलता रहा पर 1857 के विप्लव के बाद लोगों में इन परम्परागत रीतिरिवाजों के विरुद्ध जागृति पैदा करने के लिए प्रेमचंद ने साहित्य को माध्यम बनाया। प्रेमचंद ने इस प्रथा का विरोध करने हेतु तथा निम्न वर्ग को उनके अधिकार दिलाने के उद्देश्य से ऐसी कहानियों की रचना की जहॉं इन प्रथाओं का खुलकर विरोध हुआ है। इसके साथ सवर्ण के लोगों का किस तरह भेदभाव भूलकर निम्नवर्ग के लोंगों को अपनाना चाहिए इसके उदाहरण भी दिए गये।

1. अनाथ लड़की: ---

जिसका प्रकाशन सबसे पहले उर्दू में इसी नाम से जुलाई 1915 में जमाना में हुआ था और हिन्दी में गुप्तधन-1 और प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियॉं-1 में भी इसका संकलन किया गया है।

यह एक निम्न वर्ग की लड़की रोहिणी की कहानी है जो पूना में रहती है और अनाथ है। उसकी माँ रुक्मिणी उसे बड़ी मेहनत मजदूरी करके पालती है पर उसे पिता का प्यार नहीं दे पाती है। एक बार रोहिणी की स्कूल ' सरस्वती पाठशाला' में सेठ पुरुषोत्तमदास पाठशाला का मुआयना करने आते हैं, जब वे लौट रहें होते है तब रोहिणी जो अपने पिता के प्रेम से वंचित है वह सेठजी का दामन पकड़ लेती है और बालमनोभाव से सेठजी में अपने पिता को तलाशती है। सेठजी जब उसके बारे में मदरसे के अफसर से पता लगाते है तो उसे मोटर में ले जाते हैं, ढेर सारे खिलौने, कपड़े दिलाते हैं और अन्त में उसे उसके घर भी छोड़ते हैं तथा रोहिणी की माँ को कहते हैं कि --" उसके पालने पोसने का काम मेरा है और मैं उसे बहुत खुशी से पूरा करूँगा। उसके लिए अब तुम कोई फिक्र मत करो। मैंने उसका वजीफा बाँध दिया है और यह उसकी पहली किस्त है।"5 पुरुषोत्तमदास ने इस बात की परवाह न की कि वह एक निम्नवर्ग की लड़की है और वे शहर के सबसे बड़े रईस एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। उन्होंने रोहिणी को अपनी बेटी बना लिया और उसका सारा खर्चा अपने सर पर ले लिया। रुक्मिणी सेठजी को देवता समझती थी क्योंकि उसके पति ने उनकी बड़ी तारीफ की थी पर आज उसने सेठजी का देवत्व देख लिया।

रोहिणी धीरे-धीरे कली से फूल बन गई। वह बड़ी गुणी संस्कारी एवं रूपवान थी। सेठजी के बेटे नरोत्तमदास जो अमेरिका- जर्मनी से इंजीनियरिंग की डिग्री लेकर आए थे, उनके मान में सेठजी ने बम्बई में एक समारोह रखा था। जिसमें सरस्वती पाठशाला को बुलाया गया था। कौशल्यादेवी जो पुरुषोत्तमदास की पत्नी है वह खुद रोहिणी को लेने स्टेशन गई तथा समारोह खतम होने पर उसे घर न लौटने दिया और बोली-" अभी तुम्हें देखने से जी नहीं भरा, तुम्हें यहाँ एक हफ्ता रहना होगा। आखिर में भी तो तुम्हारी माँ हूँ। एक माँ से इतना प्यार और दूसरी माँ से इतना अलगाव।"6 इसके माध्यम से प्रेमचंद यह दिखाना चाहते हैं कि उच्च कुल की स्त्रियाँ स्वभावत: ज्यादातर निम्नवर्ग को नहीं अपनाती। उनमें छुआछूत का भाव ज्यादा होता है, परंतु प्रेमचंद कौशल्यादेवी के माध्यम से भारतीय स्त्रियों को यह समझाना चाहते हैं कि हमें भेदभाव छोड़ देने चाहिए। यही भेदभाव मनुष्य को मनुष्य से अलग करता है। हमे मनुष्य के गुणों की कदर करनी चाहिए। समाज में जो लोग निम्नवर्ग कहलाए जाते हैं उनमें भी अच्छे गुण, संस्कार एवं कौशल्य होता है। वे भी बड़े घरों की शान बन सकते हें। इस बात को प्रेमचंदजी ने इस कहानी के माध्यम से अंत में साबित कर दिया है। अंत में सेठजी रोहिणी की शादी अपने बेटे नरोत्तमदास से करते हैं तथा रोहिणी को कहते हैं कि -" क्यों अब तो तुम मेरी अपनी बेटी हो गई।" 7

प्रेमचन्दजी ने इस कहानी के माध्यम से यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि उच्चकुल के लोग भी निम्नवर्ग को अपने घर का एक हिस्सा बना सकते हैं और गर्व से अपना भी सकते हैं।

2. दोनों तरफ से:--

इस कहानी का प्रथम प्रकाशन उर्दू में इसी नाम से मार्च 1911 में जमाना में हुआ था और हिन्दी में नया प्रतीक अक्टूबर 1976, सोलह अप्राप्य कहानियॉ और प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य खण्ड-1 में तथा प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉ भाग-1 में संकलित है।

इस कहानी में प्रेमचंद नें पंडित श्यामसरूप' पात्र के माध्यम से उच्चकुल के व्यक्ति किस तरह से निम्नवर्ग के लोगों को अपनाते है, उसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण किया है। पंडितजी पटना के वकील हैं पर उन्होंने चमारों के साथ बिरादराना ताल्लुकात कायम किया। यहॉ तक कि एक बार उन्होंने चमारों के चौधरी की लड़की की शादी में उनके साथ खाना खाया था। पंडितजी नें जाति को महत्व न देकर मनुष्य तथा उनके गुणों को महत्व दिया। पंडितजी चमारों की बस्ती में अगर कोई बीमार पड़ता तो उसकी दवादारू करवाते और चमार भी उनकी उतनी ही इज्जत करते थे, पर सारा समाज पंडितजी जैसा न था। पंडितजी की पत्नी बड़ी धर्मभीरू थी। एक दिन सोमवारी अमावस्या के दिन कोलेसरी गंगास्नान करने गई। वहॉ पर कई औरते आई हुई थी। उनमें से एक ने उस पर ताना कसते हुए कहा कि -" जरा इन महारानी को देखो, मर्द चमारों के साथ खाना खाता है और यह गंगा नहाने आयी हैं।'' 8

स्त्रियॉ कुछ भी सह सकती हैं पर पति के खिलाफ ताना नहीं सह सकती है। कोलेसरी भी वैसी ही थी। वह पंडितजी के चमारों के साथ संबंध गवारा नहीं करती थी। पंडितजी को जब से यह बात पता चली तो उन्होंने पत्नी के खातिर चमारों के यहॉ जाना बन्द कर दिया। उनके जीवन का लक्ष्य-" अछूत भाइयों के साथ विरादराना रिश्ता कायम करना, उनको अपने तरह इन्सान समझने के काबिल बनाना ,उन्हें जहालत और बातिल परस्ती (अज्ञानता और असत्यता) की गार से निकालना था। पर पत्नी के वादे ने उन्हें बॉध रखा था।''9 यहॉ हमें स्त्रियों की जड़ता एवं रूढ़िगत धर्मभीरुता को साफ रूप से दिखाया गया है। चमारों की सेवाभक्ति इतनी थी कि वे एक हप्ता तक पंडितजी के न आने पर खुद पंडितजी के घर गये, तब पंडितजी को मजबूरन झूठ बोलना पड़ा कि वे उनकी पत्नी बीमार है। दूसरा हप्ता बीतने पर कुछ चमार बूढ़े वैद्य जो नाड़ी देखकर रोग बता देते है, और उसका बेजोड़ इलाज करते हैं उन्हें लेकर आ गये। तब पंडितजी को अपने झूठ को बचाने के लिए कई पापड़ बेलने पड़े। प्रेमचंद ने यहॉ चमारों के सेवाभाव तथा पंडितजी के प्रति उनके लगाव को दिखाया है। प्रेमचंद कहते हैं कि इन लोगों पर

आप एक बार उपकार करेंगे तो वे जन्म तक उसका बदला चुकाते रहेंगे। वह भी बड़े प्यार से और हम इन्हीं लोगों को अछूत एवं निम्न दृष्टि से देखते है । यह कहाँ की रीति है ?

पंडितजी की पत्नी को खुद पर गुस्सा आया क्योंकि उनके पति ने उनकी वजह से झूठ बोला था और उन लोगों से जो सच्चे दिल के अच्छे, निश्छल, उदार, उपकार का बदला उपकार से देने वाले हैं। प्रेमचंद इस कहानी में निम्नवर्ग के लोगों में होने वाले सारे गुणों को दर्शाने का प्रयत्न किया है। जो आमतौर पर सभ्य कहलाने वाले उच्च वर्ण के लोगों में नहीं होते, तो फिर हम किस तरह से कह सकते हैं कि निम्नवर्ग के लोग अछूत हैं ? अब कोलेसरी बदल गई थी इसीलिए जब पंडितजी तीन-चार दिन के लिए मुकदमें के सिलसिले में बाहर गये और वहाँ से जब वे वापस लौटे तो पत्नी को देखकर अचम्भित हो गये क्योंकि कोलेसरी ने घर में जलसा रखा था और सारे चमारों की औरतों को न्यौता दिया था। पंडितजी ने देखा कि कोलेसरी औरतों को पान इलायची दे रही है, बच्चों को खिलोने और मिठाइयाँ देकर प्यार जता रही है। गानाबजाना चल रहा है। सबसे बड़ी बात कोलेसरी ने आज सेठानी की तरह नहीं पर आम औरतों की तरह मोटी साड़ी पहनी है और गहने उतार दिए है। पंडितजी को सबसे ज्यादा हर्ष तब होता है जब-" कोलेसरी ने औरतों को गले लगाकर रुखसत करती थी। इनमें एक औरत बहुत मुसीन (वृद्धा) थी। जब वह गले मिलने को बढ़ी तो कोलेसरी ने झुककर उसके पैरों को अपने आँचल से छुआ और आंचल को माथे से लगा लिया।'' 10

यहाँ प्रेमचंद जी ने यह दर्शाने का प्रयत्न किया है व्यक्ति को जब सत्य का ज्ञान होता है, तब खुद-ब-खुद नवजागृति का संचार होने लगता है और उसी समय वह समाज के उस अमानुषीय नियमों का भंग करता है, जो बरसों से चले आ रहे हैं। पंडितजी यहाँ खुश हो जाते हैं और एलान करवाते हैं कि- " इस खुशी में एक-एक हजार रूपये से दस गाँवों में लेन-देन की कोठियाँ खोलूँगा और तुम लोगों को बिना सूद के रूपया दिया जाएगा। तुमको महाजनों से रूपया लेने में एक आना और दो आना रूपया सूद देना पड़ता है। इन कोठियों के खुलते ही तुम महाजनों के बन्धन से छूट जाओगे।'' 11 यहाँ प्रेमचंदजी एक और समाज की कुनीति महाजनों की सूदखोरी का खंडन करते हुए दिखाई देते हैं।

3. ब्रह्म का स्वांग :---

जिसका प्रथम प्रकाशन हिन्दी में मई 1920 में 'प्रभा' में हुआ था तथा मानसरोवर- 8 और प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ-2 में संग्रहित है। उर्दू में 'नोक-झोक ' शीर्षक से जमाना में जुलाई 1920 में प्रकाशित हुई थी।

यह कहानी भी इसी भावना से ओत-प्रोत है। यह वृन्दा और उसके पति की कहानी है। वृन्दा एक सुपात्र एवं गहन धार्मिक ब्राह्मण की कन्या है। जो कभी स्नान एवं देवोपासना के बिना पानी भी नहीं पीती। जबकि उसका पति चमार एवं मुसलमान दोस्तों के साथ उठता बैठता है तथा दावत भी उड़ाता है। प्रेमचंद यहाँ वृन्दा के माध्यम से उन रूढ़िचुस्त लोगों को बताना चाहते हैं जबकि वृन्दा के पति के माध्यम से आने वाली पीढ़ी के लोगों के बारे में बताना चाहते हैं। जिनमें उनके खुद के मन्तव्य भी शामिल हैं। इसलिए वह वृन्दा को कहता है कि- " इस पारस्परिक भेदभाव से हमारे राष्ट्र की जो हानि हो रही है, उसे मोटी से मोटी बुद्धि का मनुष्य भी समझ सकता है। इस भेद को मिटाने से देश का कितना कल्याण होता है, इसमें किसी को संदेह नहीं। हाँ, जो जानकर भी अनजान बने उसकी बात दूसरी है।" 12 यह सत्यता प्रेमचंद मात्र वृन्दा को संबोधित करके नहीं कहना चाहते हैं, पर वे देश के हर इन्सान से कहना चाहते हैं कि अगर आप देश की प्रगति चाहते हैं तो आपस में भेदभाव भूलना अति आवश्यक है। वृन्दा का पति आगे कहता है कि-" यह कितना घोर अन्याय है कि हम सब एक ही पिता की संतान होते हुए, एक दूसरे से घृणा करें; ऊँचनीच की व्यवस्था में मग्न रहें। यह सारा जगत उसी परमपिता का विराट रूप है। प्रत्येक जीव में उसी परमात्मा की ज्योति आलोकित हो रही है। केवल इसी भौतिक परदे ने हमें एक दूसरे से पृथक कर दिया है। यथार्थ में हम सब एक हैं। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश अलग-अलग घरों में जाकर भिन्न नहीं हो जाता उसी प्रकार ईश्वर की महान आत्मा पृथक-पृथक जीवों में प्रवृष्ट होकर विभिन्न नही होती ---। " 13

यहाँ पर आध्यात्मरूप से प्रेमचंद ने भारतीय जन को समझाने की कोशिश की है। अगर भगवान अपनी सन्तानों में भेद नहीं रखता और न उनके साथ अपने पराये जैसा भेदभाव रखता है तो हम तो उन्हीं की सन्तानें हैं हम भेद भाव कैसे रख सकते है। प्रेमचन्द जानते थे कि भारतीय जनता धर्मभीरू है। अगर भारतीय जनता को समझना हो तो धर्म का आधार लेना आवश्यक है ताकि वे बड़ी आसानी से समझ जाए। इसी कारण वृन्दा अपने पति की बात समझ गई और उसने निम्न वर्ग की स्त्रियों के साथ मेल-मिलाप बढ़ा लिया। अपनी ननद की शादी में उन्हें न्योता देकर घर के अन्दर बुलाया, पेड़े बाँटे, पर ये अलग बात है कि इसके बाद उसे ननद की घुड़कियाँ एवं पति की नाराजगी सहनी पड़ी क्योंकि उसका पति मात्र स्वार्थी प्रवृत्ति का था। वह पेशे से एक वकील था इसलिए मात्र दिखावे के लिए वह उन लोगों को अपना मानता था लेकिन दिल में उनके लिए कोई जगह न थी। प्रेमचंद वृन्दा के पति के माध्यम से उस समय के समाज सेवक कहे जाने वाले ढोंगियों की असलियत सामने लाना चाहते हैं। और उन पर करारा व्यंग्य भी किया है। प्रेमचन्द जानते थे कि वे लोग मात्र ऊपरी तौर पर इन निम्नवर्गों को अपना

मानते हैं पर मन से तो वे उन्हें अपने से निम्न समझते हैं जो हमें इस कहानी के अन्त में दिखाई देता है।

4. मंत्र - 1:—

जिसका प्रथम प्रकाशन हिन्दी में फरवरी 1926 को माधुरी में हुआ था और मानसरोवर - 5 में तथा प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियॉ- 3 में संकलित है। उर्दू में 'तालीक' शीर्षक से 'खाके -परवाना' में छपी थी।

इस कहानी में भी इसी बात की चर्चा की गई है। जिस जमाने में प्रेमचंद ' मंत्र-1' लिख रहे थे उस समय आर्य समाज और हिन्दू महासभा की ओर से ईसाई और मुसलमान बन चुके अछूतों को 'शुद्धि' द्वारा फिर से हिन्दू धर्म में वापस लाने के लिए विद्वान और समाज सुधारक भेजे जा रहे थे। इसलिए प्रेमचंद ने अपनी कहानी में पंडित लीलाधर चौबे जिनकी जबान में जादू है, जो पत्थर जैसे इन्सान के पास से भी चन्दा निकाल सकते हैं और हिन्दू जाति के सबसे बड़े नेता एवं उद्धारक माने जाते है। उनकी इन्ही खूबियों की वजह से उन्हें मद्रास प्रांत में भेजा जाता है क्योंकि वहॉ हिन्दुओं के गॉव के गॉव मुसलमान हो जाने की खबर आई थी और पंडितजी से बेहतर वक्ता कोई नही जो अपने भाषण के द्वारा उन लोंगों को मुस्लिम बनने से रोक सके। पर वहॉ जाने के बाद पंडितजी का अभिमान पहले भी भाषण में चकनाचूर हो गया। पंडितजी जब अपने भाषण में सारे चमारों को समझाते हैं कि वह भी 'ब्रह्म की ही सन्तान हैं' तब एक बूढ़ा अछूत उठकर उनसे पूछता है कि अगर हम ब्रह्म की सन्तान हैं तो क्या आप हमारे साथ खायेंगे। आपकी बेटी का व्याह आप मेरे बेटे से करेंगें। इस पर पंडितजी ने उनके जन्म संस्कार आहार-व्यवहार एवं शिक्षा पर सवाल उठाकर उन्हें वे सुधारने की बात करते हैं। बूढ़ा जानता था कि पंडितजी सिर्फ बातें करना जानते हैं पर दिल से उन्हें हमारे साथ कोई लगाव नही है। इसलिए बूढ़ा कहता है कि--" हम कितने ही ऐसे कुलीन ब्राह्मणों को जानते हैं, जो रात-दिन नशे में डूबे रहते हैं, मांस के बिना कौर नही उठाते, और कितने ही ऐसे है जो एक अक्षर भी नही पढ़े हैं, पर आपको उनके साथ भोजन करते देखता हूँ। उनसे विवाह संबंध करने में आपको कदाचित इनकार न होगा। जब आप खुद अज्ञान में पड़े हुए है, तो आपका उद्धार कैसे कर सकते हैं ? आपका हृदय अभी तक अभिमान से भरा हुआ है। जाइए अभी कुछ दिन और अपनी आत्मा का सुधार कीजिए। हमारा उद्धार आपके किए न होगा। हिन्दू समाज में रहकर हमारे माथे से नीचता का कलंक न मिटेगा। हम कितने ही विद्वान, कितने ही आचारवान हो जायॅ, आप हमे यों ही नीच समझते रहेंगें। हिन्दूओं की आत्मा मर गई है और इसका स्थान अहंकार ने ले लिया है। हम अब देवता की शरण जा रहे हैं। जिनके मानने वाले हमसे गले

मिलने को आज ही तैयार है। वे यह नही कहते कि तुम अपने संस्कार बदल कर आओ। हम अच्छे हैं या बुरे वे इसी दशा में हमे अपने पास बुला रहे हैं। आप अगर ऊँचे हैं तो ऊँचे बने रहिए। हमे उडना न पडेगा।'' 14

स्पष्ट रूप से यह कहनी शुद्धि आन्दोलन के विरुद्ध लिखी गई है। आर्य समाज और हिन्दू महासभा ने उन हिन्दुओं की 'शुद्धि' करके जो धर्म परिवर्तन करके इस्लाम या इसाइयत कबूल कर चुके थे फिर से उन्हें हिन्दू धर्म में दीक्षित करने के लिए 1922 के अंत में आक्रामक ' शुद्धि' और संगठन आंदोलन चलाए। इसके जवाब में मुसलमानों ने 'तबलीग' और 'तंजीम' आंदोलन शुरू किए। प्रेमचंद इन दोनों ही आंदोलनों के विरुद्ध थे क्योंकि ये दोनों ही धार्मिक कट्टरता बढ़ानेवाले और साम्प्रदायिक वैमनस्य पर चोट करने वाले थे। प्रेमचंद ऐसे किसी भी प्रयत्न के प्रबल विरोधी थे जो राष्ट्रीय एकता में बाधक हो।

इस कहानी में लेखक ने लीलाधर चौबे के माध्यम से यही प्रदर्शित करने की कोशिश की है कि जब तक सवर्णो द्वारा अछूत जातियों को बराबरी का दर्जा नही मिल जाता है और समाज सुधारक उनके बीच रहकर रचनात्मक कार्य नही करते तब तक केवल हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता या आर्य जाति के महिमा गान मात्र से अछूतों को विधर्मी होने से नही रोका जा सकता है। प्रेमचंद कहते हैं कि सिर्फ रूपयों से अछूतों में जागृति पैदा करना व्यर्थ है, उन्हें जागृत करने के लिए उनकी ज़िंदगी का एक हिस्सा बनकर उनके बीच रहना पड़ेगा। अगर अछूतों को अपनाना है तो वही मान और दर्जा देना पड़ेगा जो हिन्दुओं को मिलता है। इसीलिए डॉ. बलवन्त साधू जादव कहते हैं कि-" मंत्र-1 में प्रेमचंद हिन्दू समाजान्तर्गत कुल मर्यादा की सनातनी धारणा से घृणा करते हैं। उच्चवर्ण के हिन्दू अपनी कुलीनता का अभिमान रखते हैं। पर दूसरी ओर भ्रष्टाचारी होने से लज्जित नही होते है। वे अनपढ़ किसानों से रोटी तथा बेटी व्यवहार करने से शायद इन्कार न करेंगे। लेकिन ऐसा संबंध दलितों से जोड़ना उन्हें अपनी प्रतिष्ठा और कुलमर्यादा पर पानी फेरना जैसा लगता है। इस प्रकार के हिन्दू समाज का विद्रोह बूढ़ा अछूत करता है। हिन्दुओं से अलग होने, हिन्दू समाज का त्याग करने का धक्कादायक विचार व्यक्त करने से वह नही हिचकता है। हिन्दू समाज में रहकर माथे से नीचता का कलंक न मिटेगा'' यहाँ डॉक्टर बाबासाहब आम्बेडकर के द्वारा हिन्दू धर्म के त्याग की जो तुफानी घोषणा हुई थी, उसकी स्मृति हुए बगैर नहीं रहती है।'' 15

यहाँ पर प्रेमचंद ने उस समय की परिस्थिति एवं समाज की सच्चाई को दर्शाया है। प्रेमचंद बूढ़े अछूत के माध्यम से साबित करना चाहते हैं कि निम्न वर्ग के लोग मुस्लिम, ख्रिस्ती इसलिए बन रहे हैं क्योंकि उन्हें अपने ही लोगों से मान सम्मान नही मिल पा रहा है। उन्हें गालियाँ दी जाती हैं, इसके अलावा

समाज में उन्हें अछूत समझा जाता है, पवित्र स्थानों पर उनका प्रवेश वर्जित है, उनकी परछाई से दूर भागना तथा उनका अपमान करना आदि के कारण निम्न लोंगों का धर्म परिवर्तन करना स्वाभाविक भी है क्योंकि इन्सान चाहे छोटा हो या बड़ा सबको इज्जत की भूख होती है, उसको जहॉं इज्जत मिलेगी वह वहीं जाएगा। इसलिए निम्नवर्ग का मुस्लिम बनना जायज भी है। बूढ़े अछूत के माध्यम से प्रेमचंद यह भी कहते हैं कि ऐसे कई लोग हैं, जो मदिरा पान करते हैं मांस खाते है, पर सवर्ण के लोग उनके आगे पीछे दौड़ते हैं, क्योंकि उनके पास पैसा और ताकत है। तब उनका धर्म कहॉं जाता है ?

बूढ़े अछूत के वक्तव्य ने सबको हिला कर रख दिया। वह वहॉं से चला तो सारे लोग वहॉं से चल दिए। उसी रात को मुसलमानों ने पंडित को अधमरा कर दिया। पंडित जी के सारे दोस्त वहॉं से भाग गये। दूसरी सुबह छावनी में सन्नाटा रहने पर बूढ़े अछूत को शक गया और वह छावनी में गया। उसका शक सच साबित हुआ। पंडितजी खून से लथपथ पड़े थे। बूढ़े ने उसकी खूब सेवा की, जितनी उसके घर वाले भी न करते। कुछ समय के बाद पंडितजी पहले जैसे अच्छे हो गये। वहॉं उनकी पत्नी उन्हें मरा हुआ समझ रही थी। जब पंडितजी लौटने की तैयारी कर रहे तभी गॉंव में प्लेग का रोग फैल गया। जिसका शिकार बूढ़ा भी बना। पंडितजी ने उसकी बड़ी सेवा की। गॉंव में एक अंधश्रद्धा थी कि प्लेग एक रोग न होकर देवी का प्रकोप है। इसलिए वे लोग उन लोगों को छोड़कर चले जाते हैं, जिन्हें यह रोग होता है।

पंडितजी के माध्यम से प्रेमचंद ने कहानी में यह दर्शाया है कि प्लेग एक रोग है, जिसका इलाज हो सकता है। वह कोई देवी का प्रकोप नही है। अब पंडितजी बदल गए थे। ब्राह्मणत्व का गर्व निकल गया था और अब वे अपने परिवार के साथ वहीं रहते थे। यहॉं लेखक ने मूल रूप से यही कहना चाहा है कि अगर निम्नवर्ग को अपनाना है तो सिर्फ भाषणों से कुछ नही होगा। उनके साथ खाओ-पीओ, उठो बैठो, रहो, उनको इज्जत दो तभी वे आपको अपनावेंगे, केवल दिखावे से कुछ नही होगा।

5. सिर्फ एक आवाज :----

जिसका प्रथम प्रकाशन उर्दू में इसी नाम से जमाना में अगस्त-सितम्बर 1913 में हुआ और जो 'प्रेमपच्चीसी' में संकलित है। हिन्दी में 'गुप्तधन-1' और 'प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहसनियॉं-1' में संकलित है।

वैसे तो यह एक सामान्य कहानी है। प्रेमचंद ने इस कहानी की शुरुआत अन्धविश्वास से की है। चन्द्रग्रहण होने वाला है इसलिए ठाकुर दर्शनसिंह अपनी पत्नी के साथ गंगास्नान जा रहे हैं। बूढ़ी ठकुराइन घर की बहुओं को समझा रही हैं कि किसी भी चीज को न छुए और कोई भी भिखारी आए तो उन्हें खाली हाथ न जाने दे। यहॉं प्रेमचंद ने अंधविश्वास को साफ रूप से दर्शान का प्रयत्न किया है।

पहले के जमानें में सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण को लोग ईश्वर के घर संकट आना समझते थे और उस दिन वे भगवान की बड़ी पूजा-अर्चना करते थे तथा बड़ी नदियों जैसे गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, कावेरी, नर्मदा आदि में स्नान करने जाते थे। आज भी ठाकुर ठकुराइन पूरे गॉव वालों के साथ गंगा नहाने गये है। गॉव के सारे लोग तीसरे पहर तक गंगा किनारे पर पहुँच गये हैं।

यहॉ पर कहानी एक नया मोड़ लेती है। गंगा तट पर एक वक्ता अपना भाषण पूरे जोश में दे रहा था, उनका भाषण छुआछूत पर आधारित था। उसने कहा--" जिन लोगों की छाया से हम बचते आए हैं, जिन्हें हमने जानवरों से भी जलील समझ रखा है, उनसे गले मिलने में हमें त्याग और साहस और परमार्थ से काम लेना पड़ेगा। उस त्याग से जो कृष्ण में था, उस हिम्मत से जो राम में थी, उस परमार्थ से जो चैतन्य और गोविन्द में था। मैं यह नहीं कहता कि आप आज ही उनसे शादी के रिश्ते जोड़ें या उनके साथ सहानुभूति, सामान्य मनुष्यता, सामान्य सदाचार से पेश आएं ? क्या यह सचमुच असंभव बात है ? "16 यहॉ प्रेमचंद ने वक्ता के माध्यम सें अपनी बात को प्रस्तुत करना चाहा है यह सच है कि उस समय में निम्नवर्ग की जो हालत थी वह सब हमारा ही नतीजा था। इसी वजह से निम्न जाति के लोग धर्म परिवर्तन कर रहे थे। जिन लोगों को हम अपनाते नहीं उन्हीं से दूर रखते हैं उन्हीं लोगों को वे गले लगाकर सहानुभूति दिखाते हैं।

प्रेमचंद ने इस कहानी के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि किस तरह से एक सुन्दर ईसाई लेडी एक गन्दे बदन के लड़के को जिसके शरीर पर फोड़े निकले हुए हैं और उससे खून बह रहा है, वह उस बच्चे को छाती से लगाकर उसे चूमती है और हम लोग ऐसे बच्चें को छाती से लगाना तो दूर उसे छूते तक नहीं हैं। क्या ये हमारा कमीनापन नहीं है ?

प्रेमचंद उस वक्ता के माध्यम से कहना चाहते हैं कि अगर हम उन लोगों को अपने पास नहीं बुला सकते तो क्या उन्हें सहानुभूति भी नहीं दे सकते ? क्या यह नहीं हो सकता कि हम उन्हे अपने तीज-त्यौहार पर बुलाए ? पर समाज का एक दसतूर है कि जब हम लोगों से अछूत को अपनाने की बात करतें हैं तो पुरुष कहता है कि यह स्त्रियों के मामले हैं और स्त्री कहती है कि यह धार्मिक मामला है, बड़े जो करे वह करना पडता है। भारतीय समाज की यही सोच हमारी प्रगति के आड़े आती है। वक्ता का भाषण प्रभावशाली था इसलिए प्रेमचंद वक्ता के माध्यम से जब कहलवाते हैं कि कोई इन अछूतों को अपनाने का बीड़ा नही उठाएगा ? तब ठाकुर दर्शन सिंह जो अपने जमाने में फौजी रह चुके थे और इतना ही नही गॉव का कोई भी साहसी काम उनके अलावा कोई भी नही कर पाता था तथा गॉव का कोई भी व्यक्ति उनके सामने ऑख न उठाता था, उन्होंने अपने मान के खातिर यह बात स्वीकार की

और ललकार कर बोले-" मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ और मरते दम तक उस पर कायम रहूँगा।" 17 वैसे तो ठाकुर धर्मभीरू थे इसलिए उनकी कथनी करनी में अन्तर नही था, पर फिर भी वक्ता को डर था कि वे अपनी बात से मुकर न जाए जो आमतौर पर होता था। इसलिए वह आखिरी में ठाकुर से कहते हें कि " ईश्वर तुम्हें प्रतिज्ञा पर कायम रखें। "18

सद्गति : ---

जिसका प्रथम प्रकाशन हिन्दी में अक्टूबर 1931 में " विशाल भारत" और ' मानसरोवर' मासिक पत्रिका में हुआ था। तथा 1930 में प्रेमकुंज' के प्रथम संस्करण में एवं मानसरोवर-4 और प्रेमचंद की कहानियॉ-4 में संकलित है। उर्दू में 'नजात' शीर्षक से 'आखिरी तोहफा' में संकलित है। और **'सौभाग्य के कोड़े'** जिसका प्रथम प्रकाशन जून 1924 में प्रभा में हुआ था। तथा मानसरोवर-3 और प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉ-3 में संकलित है। उर्दू में 'नेकबख्ती के ताजियाने' शीर्षक से ' फिरौदों से ख्याल' में संकलित है।

आम तौर पर यह दोनों दलित विमर्श की कहानी है। परंतु इन कहानियों में क्रमश:' गौड़', जो पंडित घासीराम के द्वारा दु:खी चमार की मृत्यु होने पर चमार की लाश पंडित से न उठाने का आदेश चमारों को देता है तथा पंडित रूपी सवर्ण के खिलाफ निर्दोष निम्न वर्ग के व्यक्ति की मृत्यु का हिसाब मॉगता है और दूसरी कहानी में रत्ना जो जानती है कि ना.रा. आचार्य वही नथुवा है जो उसके घर में पहले काम किया करता था। जो निम्नवर्ग का था। एक बार उसके बेड पर सोने की वजह से उसके पिता रायसाहब ने उसे मार-मार कर घर से निकाल दिया था। जो आज संगीत क्षेत्र में बढ़कर आज आचार्य बना है। काफी पैसे जमा किए और आज अच्छी नौकरी भी पाई। आज राय साहब ने खुद उससे रत्ना का ब्याह करवाया पर उन्हें पता नहीं था कि वही चमार नथुवा है। रत्ना ने सब जानते हुए भी निम्नवर्ग के नथुवा से शादी की। ये बात अलग है कि उसके पिता को सच्चाई पता नहीं है।

इन दो पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद ने इन दोनों कहानियों में भी आंशिक रूप से नवजागरण को दर्शाने का प्रयत्न किया है।

* विधवा विवाह का समर्थन करती कहानियाँ

पहले हमारे समाज में बालविवाह का चलन था। जब बच्चे छोटे होते थे तभी उनकी शादी कर दी जाती थी। कभी-कभी तो बच्चे के पैदा होने के पूर्व ही उसका ब्याह माँ-बाप कर लेते थे। उसमें कितने बच्चे ऐसे होते थे जो बचपन में मर जाते थे और वे स्त्रियाँ बचपन में ही विधवा हो जाती थी। पुरुष अगर विधुर हो तो उसकी शादी हो सकती थी, लेकिन स्त्रियों के लिए दूसरा विवाह वर्जित था। विधवा को बडे कष्ट सहने पड़ते थे, जैसे उम्र भर ब्रह्मचर्य का पालन करना, सादे कपड़े पहनना, सादा खाना खाना, एक कोठरी में रहना, नंगे पैर चलना, पवित्र स्थान एवं सुप्रसंग में मनाई, पति के मरने पर बाल कटवाना, पति की संपत्ति पर कोई अधिकार न होना आदि ।

इसकी शुरुआत गुप्तकाल (ई. स. 300 से 600) से हो गई थी। उस समय की स्त्रियों का स्थिति भी ऐसी दयनीय थी कि जिसके कारण वे जीने की अपेक्षा सती होना ज्यादा पसंद करती थी। ताकि उन्हें जल्दी छुटकारा मिले। सती प्रथा का महत्वपूर्ण उदाहरण हमे गुप्तवंश में ही मिलता है, जहाँ 510 ई. के ऐरण शिलालेख में गोपराज नामक सेनापति की पत्नी के सती होने का वर्णन है। वैधव्य जीवन में होने वाली यातनाओं का निवारण करने के लिए स्त्रियाँ सती होती थी। लेकिन बाद में मुसलमानों के आक्रमण एवं हिन्दू स्त्रियों को जबरदस्ती मुसलमान बनाने के अमानुषीय व्यवहार ने स्त्रियों को मजबूर कर दिया कि वे सती हों, लेकिन बाद में इसको एक प्रथा के रूप में प्रचलित कर दिया गया। देश के सामाजिक, आर्थिक और राजनीमिक हालात के सुधरने पर भी 'सती प्रथा' अन्धश्रद्धा' के रूप में चलती रही। कितनी ही स्त्रियाँ की आहुति जबरदस्ती ही दी गई पर विधवा-विवाह वर्जित रहा।

ऐसा नहीं कि पहले विधवा विवाह नही होता था। बादशाह अकबर ने भी बैरम खाँ की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी 'सलीमा' से जो उसकी चचेरी बहन थी, उसके साथ ब्याह किया था। मुंशी प्रेमचंद ने पन्द्रह वर्ष की अवस्था में विवाह किया था। पर उनका विवाह निभ न सका। 1904 में उनकी पहली पत्नी की मृत्यु हुई, तब 1906 में उन्होंने दूसरा विवाह एक बाल विधवा से किया। इस विवाह से उनको मानसिक संतोष प्राप्त हुआ तथा उनका सांसारिक जीवन सुखमय बना। प्रेमचंद का यह दृढ़ निश्चय था कि वह एक विधुर है तो उन्हें एक विधवा से विवाह करना चाहिए। उन्होंने अपने विश्वास का मान रखा और ये साबित किया कि विधवा विवाह अपशकुन नहीं होता है। लेकिन ऐसा कभी कभी बड़ी मुश्किल से मुमकिन होता है। उस समय हिन्दुओं में तो बड़ी कट्टरता थी। हम सामान्य रूप से ये कह सकते हैं कि स्त्रियों की जिन्दगी नर्क बन गई थी। वे एक स्त्री होने की सजा भुगत रही थी क्योंकि पुरुषों को किसी भी समय में किसी भी उम्र में जिन्दगी को एश से जीने का हक था। विधुर होने पर भी वे विधवा स्त्री से शादी न

करके कम उम्र की लड़की से शादी कर सकते थे। उनके लिए विवाह संभव था पर स्त्रियों के लिए नहीं। इसी वजह से अनमेल विवाह तथा विधवाओं की संख्या भी बढ़ती जा रही थी। काशी, बनारस, पंढरपुर जैसे पंडारो में इन विधवाओं का शोषण भी होता था। पर उस समय भी वे लोग विधवाओं का विवाह करवाते थे। यानी निम्न कहलाने वाल लोगों में पहले से जागृति थी जो सवर्ण के लोगों में न थी। सर्वण कुएं के मेढक की तरह ही थे। प्रेमचंद अपनी कहानियों में निम्नवर्ग के विधवा विवाह के प्रसंगों को दर्शाते हुए सर्वण के लोगों को अज्ञानता के अंधेरे में से ज्ञान के उजाले में लोंगों की कोशिश करते दिखाई दिए हैं वे ये भी कहते हैं कि " विधवा- विवाह स्त्रियों का भी हक है।

1. सुभागी

इस कहानी का प्रकाशन केवल हिन्दी में मार्च 1930 में 'माधुरी' में हुआ था। यह कहानी प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियॉ-4 में संकलित है।

नारी जात के भीतर से प्रेमचंद अपनी समूची सर्जना में अनेक तरह के अविश्वसनीय चरित्रों को लेकर सामने आए। सुभागी भी उन्हीं मे से एक है। गॅवई गॉव की सुभागी कर्मठ चरित्र को उजागर करते हुए भी उन्हीं में से एक है जो केवल नारी-जीवन की विवशताओं को उजागर किया है बल्कि अपने संकल्प चरित्र, तेजस्वी और कर्मठ व्यवहार के चलते नारी उनसे उबर कर अपने नारीत्व को कितना गरिमामय बना सकती है, इस बात पर भी प्रकाश डाला है। सुभागी इसी उन्नत संस्कारों के बल पर पाठक वर्ग के समाज की स्मृतियों में अपना स्थान बना लेती है। सुभागी एक लड़की होते हुए भी अपने मॉ-बाप के लिए एक लड़के का फर्ज अदा करती है। सुभागी अपने बड़े भाई राजू से अधिक बुद्धिमान एंव मेहनती है। इसीलिए उसकी मॉ उसे लक्ष्मी तथा उसके पिता तुलसी महतो एसें लड़के की भॉति प्यार करते थे। ग्यारह वर्ष की उम्र में ही सुभागी विधवा हो जाती है। "घर में कुहराम मचा हुआ था। लक्ष्मी पछाड़ें खती थी। तुलसी सिर पीटती थी। उन्हें रोते देखकर सुभागी भी रोती थी। बार-बार मॉ से पूॅछती क्यों रोती हो अम्मा, मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊॅगी, तुम क्यों रोती हो ? '' 19

यहॉ प्रेमचंद यह दर्शाना चाहते हैं कि छोटी उम्र में जब लड़कियॉ विधवा हो जाती हैं तो उन्हें विधवा क्या है ? और वैधव्य क्या है ? उसका मतलब भी पता नहीं होता है। सुभागी भी नहीं जानती थी कि मॉ क्यों रो रही है। उन्हे देखकर वह भी दुखी हो रही थी। पर इस कहानी में प्रेमचंद ने उस समय की निम्न जाति की उस बड़ी सोच का दर्शन कराया है जो सामान्य: उच्चवर्ग के लोगों में हमें देखने को नहीं मिलता है। प्रेमचंद ने इस कहानी में दर्शाया है कि निम्न जाति के लोगों में उस समय विधवा विवाह होता था। इसलिए जब सुभागी बड़ी होती है तब तुलसी महतो से लोग कहते हें " जब हमारी बिरादरी में

इसकी कोई निन्दा नहीं है, तो क्यों सोच-विचार करते हो '' 20 इससे ऐसा ज्ञात होता है कि जब सवर्ण के लोग रूढिगत परम्पराओं का पीछा नहीं छोड़ सकते रहे थे तब निम्नवर्ग के लोगों में इतनी जागृती अवश्य थी कि वे छोटी उम्र में विधवा हुई लड़कियों का विवाह फिर से अवश्य करवाते, ताकि उन्हें पूरी जिन्दगी वैधव्य का जीवन न जीना पड़े।

सुभागी को भी घर के सारे लोगों ने मनाया पर वह उस समय शादी करने से मना करती है। इस पर रामू तथा उसकी पत्नी ने सुभागी को खरी- खोटी सुनाई। सुभगी घर एवं खेत का सारा काम करती थी, मॉ- बाप की सेवा करती थी और उन्हें कुछ काम न करने देता था। जिससे रामू तथा उसकी पत्नी उससे चिढ़ते थे। बात यहॉ तक आ गई कि घर का बॅटवारा हो गया और राम ने अपने मां बाप और बहन को अपने से अलग कर दिया। उसी रात तुलसी सोचता है कि --" जब रामू के जन्मोत्सव में उन्होंने रूपये कर्ज लेकर जलसा किया था , और सुभागी पैदा हुई तो घर में रूपये रहते हुए भी उन्होंने एक कौड़ी न खर्च की। पुत्र को रत्न समझा था, पुत्री को पूर्व जन्म के पापों का दण्ड। वह रत्न कितना कठोर निकला और यह दण्ड कितना मंगलमय।''21 यहॉ पर प्रेमचंद तुलसी के मनोविचार के माध्यम से ये साबित करना चाहते हें कि 'पुत्र रत्न' और 'पुत्री बोझ' ऐसा नही होता है। पुत्र अपनी पत्नी के आने से बदल जाता है पर पुत्री नहीं। पुत्री कहीं पर भी रहे वह अपने माता पिता को भूल नहीं सकती है। जबकि पुत्र एक छत के नीचे होते हुए भी मॉ-बाप की देखभाल नहीं कर सकता। अगर लड़की है तो आज समाज आगे बढ़ रहा है वरना कब का इस जीव सृष्टि का अन्त हो गया होता। लड़की जन्मदाता है, पुनर्जन्म का पाप नहीं।

सुभागी अलग होने के बाद दिन-रात मॉ-बाप की सेवा भी करती है। नई भैंसे भी खरीद लेती है, ताकि मॉ-बाप दूध-दही पा सकें। सुभागी मॉ-बाप को अपनी पलकों पर रखती है। पर विधाता को कुछ और ही मंजूर था। इसलिए तुलसी ज्यादा दिनों तक यह सुख न भोग सका। उसे ज्वर हुआ और वह मर गया। सबसे आश्चर्य की बात तब हुई जब उसका एक मात्र बेटा रामू पिता को अग्निदाह देने भी नहीं अया। तब लक्ष्मी ने अग्निदाह किया।

यहॉ पर प्रेमचंद ने रूढ़ियों को तोड़ते हुए यह बताना चाहते हें कि स्त्रियॉ भी अग्निदाह कर्म कर सकती हैं। लक्ष्मी ने न केवल अग्निदाह कर्म किया बल्कि उसके बाद होने वाले हर कर्म को सुभागी ने पूर्ण किया। गॉव के सारे लोग देखते रह गये। ऐसा कुछ भी नहीं हैं कि पुत्र अग्नि संस्कार करेगा तभी आत्मा को मोक्ष मिलेगा मोक्ष तो उसे उसके कर्मो के आधार पर मिलता है।

सुभागी के ऊपर सजनसिंह का 300 रू. का कर्ज हो जाता है जो वह जल्द ही चुकाना चाहती है, पर थोड़े दिनों के बाद अकेले रहने के कारण लक्ष्मी बीमार हो जाती है और कुछ दिनों में संसार छोड़कर चली जाती है। लक्ष्मी की अंतिम इच्छा के मुताबिक उसका क्रिया-कर्म सुभागी के हाथों सम्पन्न होता है। अब सुभागी को कुल मिलाकर 500रू. सजनसिंह को देने होते है। जो उसने तीन साल कड़ी मेहनत करके चुका दिए। गॉव के सारे लोग उसकी प्रंशसा करते थकते नही थे तथा सुभागी के लिए वे रिश्ते भी लाते थे। जब सुभागी सजनसिंह के पैसे चुका देती है तो वह खुद कहता है कि--"तुम मेरी बहू बनकर मेरे घर को पवित्र करो। मैं जॉत-पॉत का कायल हूँ, मगर तुमने मेरे सारे बन्धन तोड़ दिए। मेरा लड़का तुम्हारे नाम का पुजारी है। तुमने उसे बारहा देखा है। बोलो मंजूर करती हो ?"22 यहॉ प्रेमचंद की कहानी का सबसे महत्वपूर्ण पहलू दर्शाते हैं। सजनसिंह जानते थे कि सुभागी निम्नवर्ग की लड़की है और वह खुद एक इज्जतदार ठाकुर हैं, पर उन्होंने जॉत-पॉत तथा उसका वैधव्य न देखते हुए शादी का प्रस्ताव रख देते हैं। मनुष्य को उसके गुणों की पूजा करनी चाहिए, ऐसा नहीं है कि विधवा स्त्री विवाह नही कर सकती है, ब्याह करने में जितना अधिकार पुरुषों का है उतना ही स्त्रियों का भी होना चाहिए। इसी सन्दर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी जी लिखते हैं कि-" इस कहानी के सुगठित होने का कारण कहानी की आनुपातिक योजना है। यह योजना पात्रों की स्थिति- वर्णगत और आर्थिक दोनों ध्यान में रखकर की गई है। सवर्ण जाति की बाल-विधवा के चरित्र के विकास में इतनी संभावनाएं नहीं थी। सुभागी महतों की लड़की है, खेत उसके पास है। कुरमी या महतो खेत में खुद काम करते हैं वे ब्राह्मण क्षत्रिय किसानों की तरह हल की मूठी पकड़ना पाप नही समझते। इनकी स्त्रियॉ पर्दा नहीं करतीं-खास तौर पर जब तक कि बड़े भूस्वामी न हों। इनके यहॉ विधवा विवाह भी चलता है। यही कारण है कि सुभागी को समाज से कोई टक्कर लेनी नहीं पड़ती। कहानी का उद्देश्य सुभागी की कर्मठता दिखाना है। वह लड़की है लेकिन उद्यम की दृष्टि से वह लड़कों से बेहतर है। उसका भाई मॉ-बाप की सेवा नही करता लेकिन सुभागी मॉ-बाप की सेवा करती है। मृत्यु के बाद उधार लेकर क्रिया-कर्म करती है। इसी कर्मठता ने उसे वह आन्तरिक शक्ति भी दी कि पुनर्विवाह करे। उसी कर्मठता और कर्तव्यनिष्ठा ने उसके जीवन का नैराश्य और अंधकार दूर किया, यों कहें कि जीवन जीने की इच्छा प्रदान की। कर्मठता ही बहुत बड़ी उपलब्धि होती है।" 23

2. नैराश्य लीला

इस कहानी का प्रथम प्रकाशन हिन्दी में अप्रैल 1923 में 'चॉद' में हुआ था और यह मानसरोवर-3 और प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियॉ-2 में संकलित है। वैसे तो यह कहानी उर्दू में 'मजबूरी' शीर्षक से प्रेमचालिसी में संकलित है।

यह कहानी कैलाश कुमारी की है जो बचपन में विधवा हो जाती है। इसके सन्दर्भ में डॉ. कुमारी नूरजहाँ का कहना है कि " नारी के लिए सबसे बड़ा दुख वैधव्य का है और विधवा का स्थान दयनीय मध्यम वगीर्य समाज में अत्यन्त करुण है। प्रेमचंद ने विधवा समस्या के विभिन्न पक्षों का निरूपण बड़ी ही कुशलता से किया है। हमारे समाज में विधवाओं की सोचनीय स्थिति का चित्रण बड़े ही यथार्थ रूप में किया है। पति के मरने पर पत्नी की और वैधव्य का अभिशाप आ पड़ने पर नारी निसंबल हो जाती है। सन्तान रहित होने पर अथवा जीवन निर्वाह का कोई साधन सुलभ न हो तो उसका जीवन एक जटिल समस्या बन जाता है। बाल-विधवा की भी इसी के अन्तर्गत एक समस्या है। हमारे हिन्दू समाज में विधवाओं की अत्यन्त शोचनीय स्थिति है। नैराश्य लीला की कैलाश कुमारी ऐसी ही भारतीय बाल-विधवा है।''24 उसके विधवा होने पर उसके पिता पं. हृदयनाथ अयोध्या तथा उसकी माता जोगेश्वरी खूब रोते हैं। यहाँ प्रेमचंद ने फिर एक बार दर्शाने का प्रयत्न किया है कि छोटी उम्र में यदि कोई लड़की विधवा हो जाती है तो वह उसके मायने नहीं समझा पाती है। यहाँ पर कैलाशी भी इसलिए दुखी नहीं है कि वह विधवा हो चुकी है बल्कि इसलिए दुखी है कि उसके बच्चें की देखरेख कौन करेगा। कैलाश कुमारी सोचती है कि मुझे जिस चीज की जरूरत होती है उसे बापू लाकर दे देतें हैं तो मैं क्यों रोऊँ। यहाँ पर प्रेमचंद बाल मनोविज्ञान के साथ-साथ यह बताना चाहते हैं कि जिसे शादी का मतलब ही नहीं पता है वह विधवा का मतलब क्या जाने ?

कैलाश कुमारी पंडित की बेटी है। यानी वही उच्चकुल के नीति-नियम। इसी रूढ़िगत नीति-नियम की वजह से पंडितजी अपनी बेटी का दूसरा विवाह नहीं करवा पाते, लेकिन लड़की की खुशी के लिए मनोरंजन के साधन जैसे ग्रामोफान, ताश, गाना-बजाना, विविध तस्वीरे आदि के साथ-साथ सैर सपाटे पर जाना आदि की पूर्ति करते हैं। एक विधवा इतना मनोरंजन करे यह समाज के लोगों को गुजारा न हो सका लोगों ने आवाजें उठाना शुरू किया--" विधवा के लिए पूजा-पाठ है तीर्थ-व्रत है, मोटा पहनना है, उसे विनोद और विलास, राग और रंग की क्या जरूरत ? विधाता ने उसके सुख के द्वार बंद कर दिए है। लड़की प्यारी सही लेकिन शर्म और हया भी तो कोई चीज है।'' 25 यहाँ प्रेमचंद ने वास्तविक रूप से समाज में रहने वाले सभ्य लोगों के विचारों को स्पष्ट किया है, कि जो बच्ची विधवा का मतलब नहीं जानती, वह समाज को कैसे समझ पाएगी। समाज किसी को नहीं छोड़ता है, चाहे वह मासूम बच्ची ही क्यों न हो ? कैलाश कुमारी ने समाज के तानों से बचने के लिए उसे आध्यात्म राह पर मोड़ा। शुरू में तो उसका दिल न लगा पर बाद में वह उसमें रम गई। अब उसे पता चला कि वैधव्य क्या है ? वैधव्य

जीवन क्या है ? लेकिन अब वह आध्यात्म में दीक्षा लेना चाहती है। उसके इस फैसले से माता-पिता स्तब्ध रह जाते हैं और समाज भी उस पर उंगली उठाता है।

यहाँ प्रेमचंद दर्शाते हैं कि एक स्त्री न आध्यात्म मोड़ पर जा सकती है न अपने हिसाब से जिन्दगी जी सकती है। विधवा बनना उसके लिए एक सजा है। माता- पिता ने उसके लिए अब एक पाठशाला खोली। अब कैलाश कुमारी पाठशाला में पढ़ाकर अपना मन बहलाने लगी। तभी एक बार एक लड़की के बीमार होने पर उसकी सेवा के लिए कैलाश कुमारी उसके घर पर तीन दिन तक रहती है। उस पर माता-पिता ने पाठशाला बन्द करवा दी। पाठशाला बन्द करवा देने के बाद कैलाश कुमारी अपने मन की भडांस निकालते हुए कहती है कि--" मुझ में जीव है, जड़ क्योंकर बन जॉऊ। मुझसे यह नहीं हो सकता कि अपने को अभागिनी दुखिया समझूं और एक टुकड़ा रोटी खाकर पड़ी रहूँ। ऐसा क्यों करूँ ? संसार मुझे चाहे जो समझे, मैं अपने आप को अभागिनी नही समझती। मैं इसे अपना घोर अपमान समझती हूँ, कि पग-पग पर मुझ पर शंका की जाय, नित्य कोई चरवाहों की भॉति मेरे पीछे लाठी लिए घूमता रहे कि किसी खेत में न जा पड़ूँ। यह दशा मेरे लिए असह्य है।" 26

यह स्थिति हमारे समाज में हर एक विधवा की होती है। समाज का हर एक व्यक्ति उसे बुरी नजर से देखता है। पुरुष वैसे भी स्त्रियों को अपनी जागीर समझते हैं उस पर अगर कोई विधवा स्त्री हो तो उसका जीना मुश्किल हो जाता है। इसलिए उस समय स्त्रियों को घर से बाहर निकलने पर पाबंदी थी। अपने साथ हो रहे अन्याय की वजह से कैलाश कुमारी को पुरुषो से नफरत होने लगी। वह अब उन स्त्रियों पर हॅसती है जो पुरुषों पर निर्भर रहती हैं। वह अब स्वच्छन्द हो गई थी, उसे किसी बात की चिन्ता नहीं थी, न अब वह व्रत करती थी और बाल बनवाकर उसमें अच्छे तेल डालकर उसमें फूल लगाती। मॉ यह सब देखकर दॉतो तले उंगली दबाती है। जब उसके पिता को पता चला कि वह स्वच्छन्द रूप से विचरण करती तो वे समझ गये कि यह नैराश्य लीला है। कैलाश कुमारी अब विधवा होते हुए भी सामान्य औरतों की भॉति रहती है। पिता को पता था कि इस नैराश्य लीला का एक ही उपाय है और वह है मृत्यु। आखिर में इस उपाय का नाम तो नहीं लेते लेकिन मृत्यु को उपाय जरूर बताया है। कैलाश कुमारी अब संसार से ऊब चुकी है। अब वह जो कुछ करती है समाज को वह स्वीकार नहीं था इसलिए मृत्यु ही उसका अन्त था।

इस कहानी में विधवा विवाह नहीं है एक विधवा का समाज की तरफ आक्रोश एवं स्वच्छन्द विरोध है। जो कैलाश कुमारी के माध्यम से लेखक मुंशी प्रेमचंद बताना चाहते हैं और समाज के नियमों को तोड़ना चाहते हैं।

3. आधार

जिसका प्रकाशन केवल हिन्दी में 1926 में ' प्रेमप्रमोद के प्रथम संस्करण में हुआ था और मानसरोवर-8 एवं प्रेमचंद संपूर्ण कहानियाँ-3 में संकलित है।

इस कहानी में प्रेमचंद ने विधवा विवाह के साथ-साथ बेमेल विवाह का भी विरोध किया है। इस कहानी में अनूपा को मथुरा की पत्नी बताया गया है। वह शारीरिक रूप से तंदुरुस्त था। उसे कसरत करना पसंद था। घरवाले चाहते थे कि वह पहलवान बने इसलिए घर वाले उसकी सारी जरूरतों को पूरा करते थे। वह अपनी मनमानी करता था गायों को जब चराने जाता मब वह गायों पर ध्यान न रखरकर कसरत कराता था। उसकी गायें गॉव वालों का खेत बरबाद कर देती थी। उसकी डील-डौल देखकर डर के मारे गॉव वाले उसे कुछ नहीं कहते थे। एक बार एक सॉड़ मथुरा की गायों की वजह से गॉव में घुसा और गॉववालो के घर खेत-खलिहान तबाह करने लगा। मथुरा का घर गॉव के मध्य में था। इसी वजह से नुकसान नहीं होता था। एक बार गॉव वालों के कहने पर वह सॉड़ को गॉव से भगाने निकला। वह सॉड़ को कई गॉव दूर एक नदी आती थी वहॉ पर छोड़कर उसने दम लिया। सॉड़ के नदी के उस पार जाने पर वह नदी में से खूब पानी पिया और उसके पेट में दर्द होने लगा और वह कराह -कराह कर मर गया। इसके कारण अनूपा विधवा हो जाती है।

कहानी की असली शुरुआत यहॉ से होती है। इस कहानी में प्रेमचंद ने मुख्य रूप से तीन पात्रों को उजागर किया है। अनूपा को विधवा हुए आज एक महीना बीत गया हैं। अनूपा के मॉ-बाप उसकी दूसरी शादी करवाना चाहते है। अनूपा का भाई अपनी बहन को लेने जाता है लेकिन अनूपा की सास उसकी दूसरी शादी करवाने के पक्ष में नही है क्योंकि वह बड़ी चतुर और कुशल थी वह घर का सारा काम संभाल सकती थी। अंत मे यह मामला पंचायत में जाता है और अन्तिम निर्णय अनूपा के हाथ में छोड़ दिया जाता है।

यहॉ पर प्रेमचंद यह दर्शाना चाहते हैं कि निम्न कुल के लोग स्त्रियों को पूरा अधिकार देत हैं कि वह अपनी जिन्दगी का फैसला खुद करे। भले ही स्त्री विधवा हो पर उसका उतना ही मान-सम्मान होता है जितना औरों का। अनूपा भाई के साथ जाना चाहती थी क्योंकि उसके भाई ने उसकी शादी तय की थी। पर जब अनूपा की सास उसके देवर से उसकी शादी करवाना चाहती हे, जो अभी पांच साल का है तो वह उससे शादी करना स्वीकार कर लेती है क्योंकि--" अनूपा को जीवन के लिए किसी आधार की जरूरत थी। वह आधार मिल गया। सेवा मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है। सेवा ही उसके जीवन का आधार है।"27 दूसरी बात प्रेमचंद जो बताना चाहते हैं वह यह है कि विधवा को समाज में जीवन जीने का

आधार मिल जाए तो समाज में स्त्रियों की दुर्दशा का अंत आ सकता है। इसलिए विधवा विवाह होना जरूरी है। प्रेमचंद यहाँ स्पष्ट रूप से कहते हैं कि विधवा स्त्री के पास जीने का कोई मकसद नहीं रहता। अगर उसे एक आधार मिल जाए जिसकी वह सेवा करके अपना जीवन गुजार सके तो उसका जीवन आसान हो जाता है। अनूपा का जीवन भी वासुदेव के आने के बाद आसान हो जाता है। अनूपा उसकी खुब सेवा करती है। अब उसका प्यार मातृत्व में बदल जाता है। इसी वजह से 13 वर्ष बाद जब उसकी सगाई का दिन आता है तब वह अपनी सास से सगाई करने के लिए मना करती है और कहती है कि--" जिनके नाम पर चौदह वर्ष बैठी रही उसी के नाम पर अब भी बैठी रहूँगी। मैने समझा था मरद के बिना औरत से नही रहा जाता होगा। मेरी तो भगवान ने इज्जत आबरू से निबाह दी। जब नयी उमर के दिन कट गये तो अब कौन चिनता है। वासुदेव की सगाई कोई लड़की खोजकर कर दो। जैसे उसे अब तक पाला उसी तरह अब उसके बाल-बच्चों को पालूँगी। '' 28

तीसरी बात लेखक प्रेमचंद अनमेल विवाह के विरोध के माध्यम से बताना चाहते हैं । अगर पति-पत्नी दोनों में से किसी एक की उम्र अधिक है तो वह रिश्ता पति-पत्नी से अधिक माँ-बेटे का हो जाता है। ज्यादातर पुरुषों को अनमेल विवाह से कोई तकलीफ नहीं होती और बड़ी खुशी से अपने से कम उम्र की लड़की से शादी करने के लिए तैयार हो जाते है। पर स्त्री अपने से कम उम्र वाले लड़के से शादी नही कर पाती क्योंकि उनमें मातृत्व का भाव उत्पन्न हो जाता है जिसकी वजह से वह वासुदेव के साथ शादी नहीं करती है तथा उसकी शादी कहीं और करवाने का निर्णय लेती है।

इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद यह स्पष्ट रूप से बताना चाहते हैं कि ज्यादातर स्त्रियों का यही मानना है कि उनको जीने के लिए एक आधार चाहिए। अगर उन्हें वह आधार मिल जाए तो वह अपनी पूरी जिन्दगी आराम से गुजार सकती हैं। वह आधार चाहे छोटाबालक ही क्यो न हो।

* अनमेल विवाह का विरोध करती कहानी

अनमेल विवाह या बेमेल विवाह दोनों एक ही है। इस अनमेल विवाह की प्रथा वैदिककाल के बाद शुरू हुआ है क्योंकि वैदिक काल में नारी अपना वर स्वयं चुनने की अधिकारी थी। इसलिए नारी के लिए स्वयंवर का आयोजन किया जाता था। जैसे सीताजी राम को अपने वर के रूप में चुना था। लेकिन कालान्तर में यह प्रथा विदेशी आक्रमण कारियों के कारण लुप्त जैसी हो गई।

तब से लड़कियों की बचपन में शादी करने की प्रथा प्रारम्भ हो गई। कुछ शादियाँ तो माँ-बाप बच्चे के जन्म के पहले ही तय कर देते थे। जिस समय बच्चे शादी का मतलब नही समझते उस उम्र में अगर

उस लड़की का पति मर जाय तो उसे वैधव्य जीवन जीना पड़ता था। अगर लड़की मर जाय तो लड़का दूसरी शादी कर सकता था। कभी-कभी ऐसी स्थिति में कम उम्र या कुंवारी लड़की के साथ भी शादी हो जाती थी। तब वह अनमेल विवाह कहलाता था। इस प्रकार का विवाह ज्यादातर पैसों के जोर पर होता था। अगर लड़की गरीब है और उसके मॉ-बाप के पास विवाह करने के लिए पैसे नहीं हैं तो वह पिता अपनी लड़की का विवाह बड़ी उम्र के लड़के के साथ कर देता था। वह इस प्रकार की शादी भले ही मजबूरी में करता हो लेकिन कई बार इसका परिणाम बहुत खराब आता था जैसे कि --

* कम उम्र में शादी होने की वहज से लड़की का शारीरिक विकास न हो पाना।
* कम उम्र की वजह से लड़कियों में दर्द सहने की क्षमता कम होती थी इसलिए कई बार प्रसूति वेदना में ही उस लड़की की मृत्यु हो जाती थी।
* लड़की जब यौवन काल में आती थी तब तक उसका पति वृद्ध हो चुका होता था इसलिए उसकी सारी उमंगें धूल में मिल जाती थी।
* अनमेल विवाह में लड़कियॉ कम उम्र में ही विधवा हो जाती थी।
* अपनी उमंगों को पूरा करने के लिए कई बार वे ऐसी राह पर चल पड़ती थी, जहॉ से उनका वापस आना मुश्किल हो जाता था।
* अनमेल विवाह के कारण लड़कियों का शारीरिक एवं मानसिक रूप से शोषण होता था।

1. नरक का मार्ग

इस कहानी का प्रथम प्रकाशन हिन्दी में मार्च 1925 में 'चॉद' में हुआ था। और बाद में मानसरोवर -1 में तथा प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियॉ-3 में संकलित हुई। उर्दू में 'हसरत' नामक शीर्षक से प्रेमचालीसी में संकलित है।

कहानीकार प्रेमचंद ने इस कहानी के माध्यम से अनमेल विवाह का खुलकर विरोध किया है। इस कहानी में प्रेमचंद ने कहानी के पात्रों का नामोल्लेख नहीं किया है इससे ऐसा लगता हे कि यह कहानी आप बीती है। कहानी के प्रारम्भ में सुशीला जो कि कहानी के पात्र की पत्नी है और गरीब है, वह श्रृंगार करती है, परन्तु जितनी खुशी से वह श्रृंगार करती है उतनी ही निर्दयता से उसका पति कहता हे कि-" तुम मेरा परलोक बिगाड़ोगी और कुछ नही, तुम्हारे रंग-ढंग कहे देते हैं।" 29 यहॉ प्रेमचंद यह दिखाना चाहते हैं कि अगर पति की पति-पत्नी हम उम्र कम हो तो उसे पत्नी का सजना-संवराना अच्छा लगता है, लेकिन अगर पति की उम्र अधिक है तो उसे पत्नी का सजना अच्छा नही लगता है। पति की उम्र अधिक होने पर उसे पत्नी के सजने-संवरने के बजाय उसको भगवान की भक्ति प्यारी लगती है।

इसी वजह से पति पत्नी के बीच के रिश्ते टूट जाते है। एक लड़की जो अपने पति को लेकर कितनी सारी कल्पनाएं अपने मन में करती होगी अगर उसका विवाह किसी अधिक उम्र के लड़के के साथ हो जाता हे तो उसकी सारी कल्पनाएं धरी रह जाती हैं। उम्र मे अन्तर होने की वजह से उनकी सोच में भी अन्तर हो जाता है। इसी कारण इस कहानी की पत्नी ने जब अपने पति से पूछा कि तुमने शादी क्यों नहीं की, तो उसने जो जबाब दिया वह ध्यातव्य है--" घर संभालने के लिए गृहस्थी का भार उठाने के लिए और क्या भोग-विलास के लिए ? ''30

यह समाज की सच्चाई है। समाज के रहने वाले लोगों को स्त्री एक नौकरानी के रूप में चाहिए होती है। वह स्त्री को घर इसलिए लाना चाहता हे क्योकि उनके घर की हर चीजवस्तु को वह सही रूप से संभाल कर रखे और घर की देखभाल करे। लेकिन पुरुष यह भूल जाते हैं कि वह भी एक इन्सान है। पति की बात सुनकर पत्नी अपने आप से कहती है कि--" इन्हें स्त्री के बिना घर सूना लगता होगा, उसी तरह जैसे पिंजरे में चिड़िया को न देखकर पिंजरा सूना लगता है। यह है हम स्त्रियों का भाग्य। '' 31 यहाँ एक स्त्री का आक्रोश व्यक्त होता हुआ नजर आता है।

अनमेल विवाह के कारण न तो पति खुश हो पाता है और न पत्नी। इसमें पत्नी को ज्यादा तकलीफ होती है क्योंकि वह जिस उम्मीद से पति के घर आती है उसके सारे अरमान चकनाचूर हो जाते है। पत्नी न तो साज श्रृंगार कर पाती है न ही कहीं बाहर जा पाती है। पक्की उम्र होने के कारण व्यक्ति चिड़चिड़ा हो जाता है। ऊपर से अगर पत्नी नौजवान है तो वह उसकी हर बात पर शक करता है। पत्नी के बाल गूँथन पर, नई साड़ी पहनकर बाहर जाने आदि -- अनेक कार्यो में पति उस पर शक करता है और उसे बाहर नही जाने देता है। इन्सान प्यार का भूखा होता है अगर रूखी सूखी रोटी भी मिले लेकिन उसका साथी उससे प्यार करे तो वह अपनी जिन्दगी आराम से गुजार सकती है और उसमें भी वह स्वर्ग के सुख की अनुभूति कर सकती है। इसके बजाय धन-दौलत हो, ऐशो-आराम हो और खाने-पीने के लिए छप्पन भोग उपलब्ध हों लेकिन उसे पति का प्यार न मिले, बार-बार अपमान सहना पड़े तो सब कुछ नरक तुल्य है। अनमेल विवाह के कारण जो प्रेम पति-पत्नी में होने चाहिए वह नहीं हो पाता है। इसी कारण कहानी का पति जब बीमार होता है तब वह पत्नी उसे देखने तक नहीं जाती। पति बगल के कमरे पड़ा कराह रहा है, पत्नी को दुख होने के बजाय ईर्ष्यामय आनन्द होता है। जब रिश्ते में प्यार लगाव नही होता तो वह रिश्ता, रिश्ता न रहकर एक बोझ बन जाता है। कहानी की पत्नी पति के मर जाने के बाद भी चूड़ियॉ नही तोड़ती है। बाल गूँथती है। सिंदूर लगाती है। ऐसी पत्नी की समाज में आलोचना होना स्वाभाविक है। इसी कारण उस पत्नी की आलोचना घरवाले तथा समाज के

लोग भी करते हैं। पर पत्नी निष्ठुर हो चुकी है यह अनमेल विवाह का परिणाम है। छोटी उम्र में वैधव्य आने पर पुरुष न तो दूसरी शादी कर सकता है लेकिन स्त्रियों को यह छूट नहीं थी। परिणाम स्वरूप स्त्रियों को घर तथा समाज के ताने सहने पड़ते है जिसके कारण वह गलत कदम जैसे आत्महत्या, घर से बाहर चले जाना आदि कदम तक उठा लेती है।

इस कहानी में प्रेमचंद यह दिखाना चाहते हैं कि पति की मृत्यु के बाद पत्नी अपने मॉ-बाप को कोसती हुई घर से बाहर निकल पड़ती है। उसे यह पता नहीं होता कि इस काली रात में उसकी बरबादी छिपी हुई है जो बुढ़िया का रूप लेकर आती है। कहानी की पत्नी को उस समय तो वह बुढ़िया स्वर्ग की देवी लगती है क्योंकि वह उसे सुख दिलाने का वायदा करती है, जो कहानी की पत्नी ने सिर्फ सपने में देखा था। पर बाद में जब उसे पता चला कि वह बुढ़िया 'डायन' है, जो उसे उस मार्ग पर ले गई जो 'नरक का मार्ग' था और जहॉ से वापस आना नामुमकिन था। इसलिए कहानी की पत्नी अंत में कहती है कि--" मेरे अधः पतन का अपराध मेरे सिर नहीं, मेरे माता-पिता और उस बूढ़े पर है जो मरा स्वामी बनना चाहता था। मैं यह पंक्तियॉ न लिखती, लेकिन इस विचार से लिख रही हूँ कि मेरी आत्मकथा पढ़कर लोगों की ऑख खुले; मैं फिर कहती हूँ कि अब भी अपनी बालिकाओं के लिए मत देखो धन, मत देखो जायदाद, मत देखो कुलीनता, केवल वर देखो। अगर उसके लिए जोड़ का वर नहीं पा सकते तो लड़की को क्वारी रख छोड़ो, जहर देकर मार डालो, गला घोंट डालो, पर किसी बूढ़े खूसट से मत ब्याहो। स्त्री सब कुछ सह सकती है, दारुण से दारुण दुःख, बड़े से बड़ा संकट, अगर नहीं सह सकती तो अपने यौवनकाल की उमंगों को कुचला जाना।'' 32

यह वह सच्चाई है जो हमे स्वीकार करनी पड़ती है। प्रेमचंद इस कहानी की पत्नी के माध्यम से इस कड़वी सच्चाई को सामने लाते है। वैसे समाज इस सच्चाई को जानता है, समाज स्वार्थी होने की वजह से अपनी मनमानी ही करता है। जिसका खामियाजा लड़कियों को ही भुगतना पड़ता है।

* दहेज प्रथा का विरोध करती कहानियॉ

हमारे समाज में दहेज की समस्या एक कलंक के समान है। स्त्री और पुरुष दोनो को एक दूसरे की जरूरत होती है तो फिर यह दहेज, तिलक या केसर क्यों ? वस्तुतः यह नारी जाति का अपमान है। पहले बेटी की शादी होती थी तब मॉ-बाप ऐच्छिक रूप से बेटी को कुछ न कुछ देकर विदा किया जाता था, बाद में यह एक रिवाज बन गया। दहेज न देने पर लड़कियों का ब्याह नहीं होता है। किसी तरह व्याह हो जाने पर उन्हें जला दिया जाता है, उन्हें मार दिया जाता है। यह अमानुषिता दिनोदिन इतनी बढ़ गई

कि दहेज के कारण की हत्याएं दिन-ब-दिन बढ़ती ही गई। निम्नवर्ग के लोगों में दूषण न के बराबर था। इसका सबसे बड़ा उदाहरण यह है कि मध्य गुजरात की मारू रबारी जाति में भील जाति में आज भी शादी के समय वरपक्ष कन्या पक्ष को दहेज देकर कन्या लेते है। पुराने समय के 64/- रूपये चले आ रहे है पर उससे ज्यादा दहेज देकर भी उनको कन्या से शादी करनी पड़ती है। इससे यह होता है कि कोई भी कन्या अविवाहित नहीं रहती है, चाहे वह शारीरिक रूप से विकलांग ही क्यों न हो ? लेकिन सवर्ण समाज में दहेज प्रथा अभी तक विद्यमान है, इसी वजह से उनमें लड़कियॉ बोझ के समान होती है। यह दहेज प्रथा उत्तर वैदिककाल से मानी जाती है। शादी के बाद जब लड़की ससुराल जाती है तब वह अपनी सामान्य जरूरत की चीजों को ससुरार वालों से मांगते समय हिचकिचाती है। क्योंकि वह घर एवं घर के लोंगों के लिए नई है। इसलिए शादी में वह उन चीजों को साथ लेकर आती है जो उसकी सामान्य जरूरतों को पूरा करे, जैसे कपड़े, बरतन, गहने आदि। मॉ- बाप भी उसे अपनी हैसियत के अनुसार देते थे, लेकिन बाद में जब दहेज प्रथा कुप्रथा के रूप में तबदील हो गई तो वर पक्ष वाले कन्या पक्ष के सामने नाजायज चीजों की मॉग करने लगे। जैसे सोना, नकद, घर, घर का सामान जैसे - टी.वी. , गाड़ी, सोफा सेट तथा घर से संबंधित अन्य सामान आदि। सवर्ण लोग इतने दहेज मॉगते थे कि लड़की के मॉ-बाप गरीब हो जाय इसी कारण से पहले लड़की के जन्म होने पर उसे बोझ समझ कर उसे 'दूध पीती' करने की प्रथा थी। इस दूध पीती के रिवाज में जन्मी लड़की को उबले हुए दूध में डुबोकर उसकी हत्या कर दी जाती थी, यानी बाल हत्या। इस दहेज कुप्रथा के कारण कई घर बदबाद और तबाह होते देखे जाते थे और आज भी देखे जा रहे हैं। कुछ दिन पहले एक फिल्म का चित्रांकन किया गया था जिसका नाम था 'दूल्हा बिकता है' जो दहेज प्रथा ही आधरित फिल्म थी, जो बिहार और उत्तर प्रदेश की समस्या को ध्यान में रखकर बनाई गई थी। आज भी इन प्रदेशों के अलावा मध्यप्रदेश, एवं दक्षिण के कुछ प्रदेशों में दहेज प्रथा का प्रमाण कुछ अधिक ही दिखाई देता है। ऐसा नहीं कि अन्य राज्यों में यह प्रथा विद्यमान नहीं है लेकिन कुछ कम ज्यादा जरूर है। दहेज न देने पर उसको ससुराल वाले उसके साथ एक नौकरों जैसा व्यवहार करते हैं। प्रेमचंद इस मायने में भाग्यवान थे कि उन्हें अपनी लड़की की शादी में दहेज नहीं देना पड़ा था। क्योंकि उनका दामाद आदर्शवादी था। प्रेमचंद ने अपनी दो कहानी- कुसुम और पौपुजी में दहेज प्रथा का खुलकर विरोध किया है।

1. कुसुम

जिसका प्रथम प्रकाशन उर्दू में इसी नाम से वर्षांक 1932 में इस्मत में छपी थी। हिन्दी में अक्टूबर 1932 को चांद में छपी थी और मानसरोवर-2 और प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियॉ- 5 में संकलित है।

यह कहानी में महाशय नवीन, जो कि पेशे से एक वकील हैं, परंतु साथ ही बहुत बड़े कवि भी हैं। उनकी बेटी 'कुसुम' है। यहॉ पर प्रेमचंद खुद नवीन के दोस्त के रूप में उभर कर आए है। कुसुम नवीन की इकलौती संतान है। पर वे उसे बड़े प्यार से पालते है। वे कहत हैं कि- " हमें ईश्वर ने पुत्र न दिया, पर हम अपनी कुसुम को पाकर सन्तुष्ट थे और अपने भाग्य को धन्य मानते थे।'' 33 यहॉ प्रेमचंद ने खुलेआम् यह बताना चाहते हें कि पुत्री भी पुत्र से ज्यादा पिता की सेवा करके पिता को सन्तुष्ट कर सकती है। जैसे सुभागी कहानी में सुभागी अपने माता-पिता की सेवा तथा उनका नित्य का क्रिया-कर्म स्वयं करती है, वह भी बड़ी धूम-धाम से, जबकि उसका भाई रामू अभी जीवित है लेकिन वह कुछ भी नहीं करता है। उन्हें वे घर से निकाल देते हैं वे सुभागी के माता-पिता अपनी बेटी से संतुष्ट हैं। उसी तरह नवीन साहब भी अपनी बेटी कुसुम से सन्तुष्ट है। प्रस्तुत कहानी के प्रमुख पात्र कुसुम का गौना एक साल पहले हो गया है। कुसुम कहानी के प्रारम्भ में तो बड़ी लीचड़ लगती है और पति द्वारा निरन्तर अपमानित होते हुए तथा एक भी पत्र का उत्तर न पाते हुए भी बराबर पत्र लिखती रहती है, जो एक सामान्य सी स्त्री प्रतीत होती है। वह अन्दर ही अन्दर घुलती जाती है यह बात उनके पिता नवीन को पता चलती है। नवीन अपना दर्द अपने मित्र यानी लेखक से कहता है। लेखक कुसुम द्वारा उसके पति को लिखी गई पॉचों चिट्ठियों को पढ़ता है। और सोचता है कि--" यह बात मेरे लिए असह्य थी कि कोई स्त्री अपने पति की खुशामद करने पर मजबूर हो जाय। पुरुष अगर स्त्री से उदासीन रह सकता है, तो स्त्री उसे क्यों नहीं ठुकरा सकती ? यह दुष्ट समझता है कि विवाह ने एक स्त्री को गुलाम बना दिया। वह उस अबला पर जितना अत्याचार चाहे करे, कोई उसका हाथ नही पकड़ सकता है, कोई चूॅ भी नही कर सकता। पुरुष अपनी दूसरी, तीसरी, चौथी, शादी कर सकता है, स्त्री से कोई सम्बन्ध न रखकर भी उस पर कठोरता से शासन कर सकता है। वह जानता है कि स्त्री कुल मर्यादा के बन्धनों में जकड़ी हुई है, उसे रो-रोकर मर जाने के सिवा और कोई उपाय नहीं है। अगर उसे भय होता कि औरत भी उसकी ईंट का जबाब पत्थर से नहीं, ईंट से नहीं, केवल थप्पड़ से दे सकती है, तो उसे कभी इस बदमिजाजी का साहस न होता।'' 34

यहॉ पर प्रेमचंद ने खुद अपने विचार को प्रकट करते हुए कहा कि स्त्री को समाज में पहले से दबाया गया है। पुरुष उस पर हर बार मनमानी करता रहता है। स्त्री यह शोषण सहती है, इसी वजह से वह दुखी होती है। स्त्री एक जननी है फिर भी उसके जन्म को कोशा जाता है। कुसुम ने अपने पत्रों में दया, लज्जा, तिरस्कार, अन्याय आदि सभी भावों को दर्शाया है। फिर भी उसका पति उसको एक भी पत्र नहीं लिखता है। इसी सन्दर्भ में रामदीन गुप्त कहते हैं कि--" वर्तमान पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में स्त्री

को हर समय धर्म, त्याग, पति सेवा, संतोष, संयम आदि का पाठ पढ़ाया जाता है। जिसका उद्देश्य स्त्री के आत्म-सम्मान, आत्म-विश्वास, आत्म-निर्भरता, स्वाधीनता आदि भावों को कुचलकर उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व-विकास के मार्ग को अवरुद्ध करना है।'' 35

लेखक जब कुसुम के पति को मिलता है तो आश्चर्य चकित हो जाता है क्योंकि वह बड़ा विनम्र एवं सुशील था। उनके पास जाने पर वह पैर छूता है। एवं उनका स्वागत सत्कार भी करता है। लेखक के मन में एक पल के लिए उसके तरफ की सोच बदल जाती है। पर जब उसे पता चलता है कि वह शादी उसने उसकी रजामंदी से नहीं की है वह विलायत पढ़ने जाने वाला था। नवनीतजी ने उसके ऊपर जोर देकर शादी करवा दी थी और उसे विलायत भेजने का वायदा भी किया था। इसी कारण वह कुसुम से ऐसा व्यवहार कर रहा था। वह युवक नवीन से विलायत जाने के लिए पैसे चाहता था।

इसी सन्दर्भ में डॉ. रामवक्ष कहते हैं कि --" कुसुम (अक्टूबर-1932) में प्रेमचंद ने दिखाया है कि वर्तमान शिक्षा से हमारे युवक कितने स्वार्थी हो गये हैं कि पत्नी का त्याग करके श्वसुर के धन से विलायत जाना चाहते हैं।'' 36 लेखक उसी समय उसे दुत्कारते है क्योंकि उसने इन्सान की भावनाओं की कद्र न करके पैसे को एहमियत दी है। यह बात आग्रा जाकर लेखक नवीन जी को कहते हैं। यह सुनकर नवीनजी जमाई को पैसे भेजने का इन्तजाम करते है परंतु जब कुसुम को पता चलता है कि उसके पति की नाराजगी के पीछे दहेज की रकम का न मिलना है, तब उसकी आत्मा को काफी ठेस पहुँचती है और वह अपने माता-पिता को साफ इन्कार कर देती हे, बल्कि मर जाने की धमकी देती हुई अपनी माता से कहती है कि --" यह उसी तरह की डाकाजनी है, जैसा बदमाश लोग किया करते हैं। किसी आदमी को पकड़कर ले गये और उसके घर वालों से उसके मुक्तिधन के तौर पर अच्छी रकम ऐंठ ली।'' 37

यहाँ कुसुम खुले तौर पर दहेज का विरोध करती है। यह नारी अस्मिता एवं नारी-शिक्षा का परिणाम है। कुसुम शिक्षित है, अत: उसे विश्वास है कि वह आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर रह सकती है और ऐसा होता भी है। एक साल बाद जब लेखक उससे मिलते है तब उसके चेहरे पर स्वाभिमान और स्वतंत्रता की लाली और तेजस्विता दिखती है। वह पति का नाम भी नहीं सुनना चाहती है, न उन्हें पत्र लिखती है। प्रेमचन्द कहते हैं कि जिस दिन स्त्री अपनी कुल मर्यादा तोड़ती है तो पुरुष को लेने के देने पड़ जाते है।

1. पैपुजी

इस कहानी का प्रकाशन केवल हिन्दी में अक्टूबर 1935 में माधुरी में हुआ और गुप्तधन-2 तथा प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियाँ-5 में संग्रहित है।

यह एक ऐसी कहानी है जहॉ लेखक प्रेमचन्द आप बीती बताते है। लेखक कहते हैं कि मैने किसी की बारात में न जाने की प्रतिज्ञा अपनी जनेऊ पकड़कर की थी, उसके पीछे एक घटना थी। मैं एक दोस्त की शादी में देहात में गया हुआ था। वहॉ पर जाकर मैंने देखा कि वरपक्ष वाले कन्यापक्ष से झगड़ा करने के लिए हमेशा तत्पर इसलिए रहते थे तथा कई नाजायज मांगे उनके सामने रखी थी, जैसे- दस सेर बर्फ देने पर और बर्फ की मॉग करना, दस सेर तम्बाकू देने पर सिगरेट के 100 पैकेट और मॉगना, विवाह संस्कार के समय एक दर्जन विस्की की बोतल मॉगना, तथा न देने पर विवाह न करने की धमकी देना। यह सब लेखक के लिए असह्य था। लेखक अपने मित्र को समझाने गये तो वह कहता है कि क्या आपने भांग रखी है? "होश में रहने वला आदमी ऐसी बाते नहीं कर सकता। हम यहॉ लड़का व्याहने आए हैं, लड़की वालों को हमारी सारी फरमाइशें पूरी करनी पड़ेगी, सारी। हम जो कुछ मांगें उन्हें देना पड़ेगा, रो-रोकर देना पड़ेगा। दिल्लगी नहीं है। नाको चने न चबवा दे तो कहिएगा। यह हमारा खुला अपमान है। द्वार परबुलाकर जलील करना। मेरे साथ जो लोग आए हैं वे नाई-कहार नहीं हैं, बड़े आदमी हैं। मैं उनकी तौहीन नहीं देख सकता। अगर इन लोगों की यह जिद है तो बारात लौट जाएगी।" 38

यहॉ पर प्रेमचन्दजी भारतीय समाज की सच्चाई को हमारे सामने प्रस्तुत करना चाहते हैं। समाज में लड़के वालों के पास भले ही कुछ हो या न हो लेकिन वे बारात में ऐसे जाते हें जैसे दुनिया में सबसे रईस लोग यही हैं। वे कन्या पक्ष के लोगों से ऐसी चीजों की मॉग करते हैं जो उनकी औकात के बाहर की होती है। वास्तव में वे चीजें वे लोग खुद खरीदकर नहीं ला सकते हैं इसलिए उसका बोझ कन्यापक्ष पर डाल देते हैं। वे इस बात को भूल जाते हैं कि सामने वाले भी इन्सान है। दहेज के नाम पर वरपक्ष वाले खुले आम लूट करते हैं और जिसमें कन्यापक्ष वाले बेकार हो जाते हैं। दहेज लेकर भी अगर लड़के वाले शांत बैठे तो भी अच्छा है पर वे तो लड़की को बाल्टी और कन्यापक्ष को कुँआ समझ कर कुँए में बाल्टी बार-बार डालते हैं, ताकि उन्हें कुछ न कुछ मिल जाए वे यह भूल जाते हैं कि कुँए में पानी होगा तभी तो कुछ मिलेगा।

प्रेमचंद यहॉ पर भारतीय समाज की परिस्थिति एवं उसके सोच को दर्शाने का प्रयत्न करते हैं जो आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी उस समय रही होगी। समय के अनुसार थोड़ा बहुत परिवर्तन भले आ गया हो, लेकिन दहेज प्रथा आज भी कायम है। वरपक्ष के लोगों के ताव को देखकर मैं समझ गया कि आज दो दिन के लिए बकरी शेर बनी है, इसलिए वह मनमानी कर रहा है। मेरे लिए यह असह्य था। मैं वहॉ से चला आया और उस दिन से बारात में न जाने का फैसला कर लिया। उसी दौरान मेरे परम मित्र सुरेश बाबू के लड़के की शादी आई। सुरेश बाबू जब निमंत्रण देने आए तो तो मेंने शादी में न

जाने की वजह बताई। सुरेश बाबू ने बताया कि मैं जैसा चाहता हूँ वैसा ही होगा। कोई कन्यापक्ष से नाजायज मॉग नहीं करेगा और न ही नाजायज लेन-देन को लेकर झगड़े ही होगें। मैं शादी में गया। सब कुछ मेरे मुताबिक हो रहा था। तभी कन्या के पिता ने वर पक्ष के पैर धोकर उस पर अक्षत लगाए। मुझे इसमें कन्या पक्ष का अपमान लगा और मैंने इसका विरोध किया लेकिन कन्या के पिता ने इसको अपना अपमान न समझकर सौभाग्य समझा तथा मेरे परम मित्र ने भी यही बताया कि यह परम्परा से चला आ रहा रिवाज है। तभी मेरे मन में आया कि--" जब समाज में औचित्य ज्ञान का इतना लोप हो गया है और लोग अपने अपमान को अपना सम्मान समझते हें तो फिर क्यों न स्त्रियों की समाज में यह दुर्दशा हो, क्यों न अपने को पुरुष के पॉव की जूती समझें। क्यों न उनके आत्मसम्मान का सर्वनाश हो जाए।'' 39

यहॉ पर प्रेमचन्द साफ-साफ यह कहना चाहते हैं कि हमारे रीति-रीवाज ही ऐस हें जो समाज में कुरीति-रीवाज को फैलाते है। अगर इनको बन्द करना है तो सबसे पहले हमें समाज की रूढ़िगत परम्पराओं को, जो कुरीति-रिवाजों को जन्म देती है, उन्हें ही दूर करना होगा। तभी ही समाज का कल्याण होगा, अन्यथा समाज पतन की ओर अग्रसर होता जाएगा।

* अपशकुन एवं अन्धविश्वास का विरोध करती कहानियॉ

परम्पराओं से हमारे समाज में धर्म के नाम पर कई अन्धविश्वास चले आ रहे हैं। जिसमें कितनी ही चीजों को शुभ-अशुभ माना जाता है जैसे बिल्ली का रास्ता काटना, कुत्ते का रोना, अच्छे काम के लिए जाते समय विधवा का मुँह दिखना, एक छींक आना, दूध उबलकर गिरना, आदि को आज भी अशुभ माना जाता है। इसमें कई ऐसी चीजें हैं जो हमारे यहॉ अशुभ हैं तो दूसरे देशों में शुभ। जैसे भारत में धूँअड़ का मुँह देखना अशुभ है जबकि अमेरिका में शुभ माना जाता है। हम बिल्ली के रास्ता काटने से डरते हैं जबकि अमेरिका तथा चीन जैसे देशों में बिल्ली को पाला जाता है। भारत में ही कॉच का टूटना कई जगह अशुभ माना गया है तो कई जगह शुभ। इसी प्रकार पुरुषों की दाईं ऑख और स्त्रियों बाईं ऑख फड़कना अशुभ माना गया है। इनमें से बहुत सी ऐसी चीजें हैं जिन्हें मनुष्य अपने अनुसार शुभ तथा अशुभ मान लेता है। आज भी समाज उसे अपने अनुसार मान रहा है। आज भी शादी अगर मुहूर्त पर न हो, सुहाग की साड़ी को कुछ हो, कॉच की चूड़ियॉ टूट जाएं तो अशुभ अपशकुन मान लिया जाता है। लोग यह क्यों भूल जाते हैं कि यह सभी निर्जीव चीजें हैं कभी न कभी तो टूट ही जाएंगी। इन अपशकुनों से लोग घबराते हैं और इससे बचने के लिए पंडितों से हवन इत्यादि भी करवाते हैं। पंडित भी

अपना फायदा देखते हुए ऐसे विचारों से जनता को डराते रहते हैं। प्रेमचंद ने अपनी दो कहानियों 'सुहाग की साड़ी' और 'अंधेर' में इन अन्धविश्वासों का खण्डन किया है।

1. अंधेर

जिसका प्रथम प्रकाशन उर्दू में इसी नाम से जुलाई 1913 में 'जमाना' में हुआ था। तथा प्रेमपच्चीसी और देहात के अफसाने में संकलित है। हिन्दी में गुप्तधन-1 और प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियॉं-1 में संकलित है।

यह कहानी वैसे तो सामान्य है। जहॉं गॉंव की पृष्ठभूमि दिखाई गई है। गॉंव में आज नागपंचमी का दिन है। वर्षो से यह परम्परा रही है कि इस दिन साठे और पाठे के नौजवान कई वर्षो से जीतते थे और इस बार भी यही हुआ। साठे के गोपाल ने पाठे के बलदेव को मार गिराया। गोपाल कद काठी में बलवान एवं निडर था। सिर्फ वह लाल पगड़ी यानी दरोगा से डरता था। बलदेव ने अपना बदला लेने के लिए गोपाल जो सावन के महीनों में खेतों की रखवाली करता था वहीं धोखे से उसे लाठी से पीटा था। गोपाल पूरी तरह बेसुध पड़ा रहा। कहानी का रोमांचक मोड़ यही से शुरू होता है। जब गॉंव में गोपाल के पीटे जाने की खबर फैल जाती है तब दरोगा जी अपनी जेब गरम करने के लिए गोपाल के यहॉं आते हैं। गोपाल के रपट न लिखाने के जुर्म में दरोगा घूस खाना चाहते हैं। गोपाल के मना करने पर भी मुखिया के कहने पर गौरा 50 रूपये दे देती है। जिसमें से 25 रूपये मुखिया खुद खा जाता है और 25 रूपये दरोगा को देता है।

यहॉं पर प्रेमचंद जी ने साफ तौर पर गॉंव में कानून के नाम पर हो रही मनमानी का चित्रण किया है। इसके अलावा भी अब धर्म के नाम पर गौरा और गोपाल को लूटा जाता है। इस विपत्ति के टलने पर गौरा माता का व्रत और सत्यनारायण की कथा रखती है। जिसमें काफी खर्च हो जाता है। औरतें वैसे भी धर्मभीरू होती है। और अगर कोई धर्म के नाम पर कुछ करने को कहे तो धर्म पर विश्वास के बदले अन्धविश्वास रखकर खर्च करती जाती है। जैसा यहॉं गौरा करती है। जिसने मारा उसका बाल भी बांका न हुआ पर जिसने मार खाई उसकी अच्छी खासी चपत लग गई। इसीलिए जब पटवारी गौरा से कहता है कि सत्यनारायण की वजह से गोपाल को कुछ न हुआ। तब " गोपाल ने अंगड़ाई लेकर कहा- सत्यनारायण की महिमा नहीं यह अंधेर है।'' 40 समाज में सामान्य मनुष्य भी जानता है कि हमारे धर्म में कई अन्धविश्वास है पर उसे कभी समाज से बद्ध होकर तो कभी परिवार से बॅंधकर न चाहते हुए भी उन अन्धविश्वासों को मानना पड़ता है।

2. सुहाग की साड़ी

जिसका प्रथम प्रकाशन केवल हिन्दी में जनवरी 1922 को प्रभा में तथा मई 1930 को उषा में हुआ था और मानसरोवर-7 तथा प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ-2 में संकलित है।

यह कहानी पूर्ण रूप से अन्धविश्वास पर जुड़ी हुई है।यह एक सत्य घटना पर आधारित कहानी है। जब हमारे देश ने आजादी पाने के लिए अंग्रेजी कपड़ों का विरोध किया था तब हमारे स्वयंसेवक घर-घर जाकर अंग्रेजी कपड़ों का विरोध करते तथा कपड़ों को इकट्ठा करके उसकी होली जलाते थे। इसके अलावा लोगों से प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर भी करवाते थे कि वे विदेशी कपड़े नही पहनेगें। इसी पर आधारित गौरा तथा कुँवर रतनसिंह की कहानी है। गौरा हिन्दू समाज की एक धर्मभीरू और अन्धविश्वासी स्त्री है। उसमें वे सारे गुण थे जो हिन्दू समाज में परम्परा से चले आ रहे थे, परन्तु रतनसिंह हँसमुख, चिंताशील, आशावादी, स्वदेशप्रमी तथा राजनीतिज्ञ पुरुष था। इसी कारण पति-पत्नी के विचारों में जमीन-आसमान का अन्तर था। यही कारण था कि जब स्वयंसेवक कपड़े लेने आए तब गौरा ने आनाकानी की। पर घर की नौकरानी केसर महरी ने अपने विदेशी कपड़े दिए तो रतनसिंह के आदेशपूर्ण नेत्रो ने गौरा को मजबूर कर दिया कि वो कपड़े निकाले। गौरा के मँहगे से महँगे कपड़े भी होली में दान हुए पर वह 'सुहाग की साड़ी' नहीं देना चाहती थी इस पर पति-पत्नी के बीच काफी बहस भी हुई। पत्नी की जिद के आगे रतनसिंह को प्रतिज्ञापत्र पर झूठे हस्ताक्षर करने पडे। जब गौरा ने पति के झूठे हस्ताक्षर करने की ग्लानि उनके मुख पर देखी तो उसने साड़ी दे दी। लेकिन बार-बार अनिष्ट शंका मन में आने लगी। इस बात को कई महीने गुजर गये। रतनसिंह गौरा को घूमाने भी ले गये, पर गौरा का मन विचलित था। ऊपर से नौकर भी छूट गये थे। एक दिन पति के जोर की वजह से दोनो स्वदेशी मार्केट घूमने गये। वहाँ उसे अपने नौकर रामटहल तथा केसरमहरी से पता चला कि उनकी एक 'सुहाग की साड़ी' जलने पर इतनी क्रान्ति आई कि वे अब स्वदेशी माल ही खरीदते हैं। लोगों का मानना है कि बड़े लोग जब साड़ी जला सकते हैं तो हम क्यों नहीं ? तभी से स्वदेशी मार्केट में तेजी आई और लोगों को अपना रोजगार मिलने लगा। गौरा ने जब यह सुना तो उसके मन से अपशकुन का भूत उतर गया।

प्रेमचन्द यहाँ मुख्यरूप से दो बातें उजागर करना चाहते हैं- 1. विदेशी चीजों से ज्यादा हमें स्वदेशी चीजों का उपयोग करना चाहिए ताकि हमारे भाई-बहनों को रोजगार मिल सके। 2. हमें किसी भी चीज में अन्ध विश्वास नहीं करना चाहिए। क्योंकि अन्धविश्वास इन्सान को अन्दर से खोखला बना देता है।

*** पर्दाप्रथा का विरोध करती कहानी:-- "दुराशा"**

वैदिककाल में स्त्रियों को जननी के रूप में माना जाता था। उनका उतना ही महत्व एवं सम्मान था जितना कि पुरुषों का होता था। स्त्रियों के लिए यह उक्ति प्रचलित थी -" यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता''। मौर्यकाल के बाद भारत में विदेशियों के आक्रमण बढ़ने लगे। इन आक्रमणों का मूल था जर, जोरू और जमीन। उस समय अगर कोई राजा किसी रानी की चर्चा सुनता था तो उसे पाना उसके लिए वीरता माना जाता था, चाहे वह स्त्री किसी की पत्नी ही क्यों न हो ? इसलिए स्त्रियों की रक्षा के लिए उन्हें पर्दे में रखना आवश्यक था। परन्तु धीरे-धीरे यह प्रथा दृढ़ बन गई। समयान्तर इस परदाप्रथा का अन्धानुकरण किया जाने लगा। स्त्रियों को अब हर चीज में पर्दा करना पड़ता था। पर्दे की वजह से स्त्रियॉं घर से बाहर कदम न रख पाती थी। बाहर जाना हो तो पति के साथ ही जाती थी और पति उसकी निगरानी रखता था। किसी को ऊँची आवाज देकर नहीं बुला सकती थी। पति, भाई, और पिता के अलावा सबके सामने घूँघट में जाना, बाजार में आवश्यक चीजों की खरीददारी करने भी न जा पाना। इसी कारण से स्त्रियॉं 'कोल्हू का बैल' बनकर रह गई।

प्रेमचंद कहते हैं कि झॉंसी की रानी लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई होलकर, रजिया सुल्तान, नूरजहॉं आदि कई रानियॉं थीं जिन्होंने उस जमाने भी बेपर्दा होकर अपने राज्य की रक्षा की थी। तो फिर आज हम उन स्त्रियों को इतना कमजोर क्यों बना रहें हैं ? वह भी निडर होकर अपनी आत्मरक्षा कर सकती हैं। प्रेमचंद इस प्रथा के विरोधी थे और इस पर्दाप्रथा का विरोध करती उनकी एक कहानी दुराशा है।

दुराशा

जिसका प्रथम प्रकाशन उर्दू में 'दावते-शीराज' नामक शीर्षक से अक्टूबर 1922 में हजार दास्ता में हुआ था, तथा ख्वाबोख्याल में भी संकलित है। हिन्दी में जुलाई 1924 में 'प्रेमप्रसून' में प्रकाशित हुई थी और मानसरोवर-6 में तथा प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियॉं-2 में भी संकलित है।

वैसे तो यह कहानी सामान्य है। जहॉं होली के दिन दयाशंकर जो एक कार्यालय के एक साधारण लेखक हैं, वह अपने मित्र आनंदमोहन जो एक कालेज का विद्यार्थी है और बोर्डिंग हाउस में रहता है, उसे रत्रि को 9 बजे अपनी पत्नी सेवती के हाथों के बने खाने की तारीफ करते-करते अपने घर भोजन के लिए ले जा रहा है। स्वभावत: दयाशंकर पुराने ख्यालों के हैं। इसलिए आनंद मोहन के पर्दाप्रथा पर अपना विचार पूछने पर वह पर्दाप्रथा का समर्थन करते हुए कहता हैं कि--" मैं परदे की प्रथा का सहायक और समर्थक हूँ। क्योंकि हम लागों की सामाजिक नीति इतनी पवित्र नहीं है कि कोई स्त्री अपने लज्जा भाव को चोट पहुँचाए बिना अपने घर से बाहर निकले।'' 41 इस पर आनन्दमोहन कहत हैं कि--" पर्दे से स्वभावत: पुरुषों के चित्त में उत्सुकता उत्पन्न होती है और वह भाव कभी तो बोली-ठोली में प्रकट होता

है और कभी नेत्रों के कटाक्षों में।'' 42 इस वार्तालाप से यह पता चलता है कि दोनो मित्रों की विचारसारणी में अन्तर है।

दयाशंकर रूढ़िवादी है तो आनन्दमोहन स्वच्दन्तावादी। दयाशंकर का कथन समाज की प्राचीन स्थिति को उजागर करना है। दोनों मित्र घर पहुँचे पर घर में अंधेरा था। वहीं ज्योतिस्वरूप जो उनके दूर के संबंधी थे वे भी उनके साथ आए। अंधेरे की वजह से कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। वहीं आनन्दमोहन गिर पड़े। दयाशंकर ने अन्दर जाकर देखा तो सेवती माथे पर हाथ रखकर बैठी है और चूल्हा ठंडा है, सिर्फ चटनी ही बनी है। दयाशंकर सेवती से खाना न बनाने का कारण पूछता है, परन्तु सेवती पहले से ही झल्लाई हुई होती है इसीलिए दयाशंकर से सीधे मुँह बात नहीं करती है। टेढ़े-मेढ़े जबाब देती है। उस पर आनन्दमोहन मारे भूख के बाहर चिल्लते हैं। सेवती आखिर में जब बताती है कि दियासलाई न होने की वजह से खाना नही पका, तब दयाशंकर इसे मामूली बात बताता है। तभी सेवती अपनी लाचारी गिनवाती है- जैसे वह घर के बाहर नहीं जा सकती, नीचे दुकानदारों से चिट्ठी फेंककर सामान नहीं मॅंगवा सकती, किसी को पुकार नहीं सकती, छत पर नहीं जा सकती, क्योंकि दयाशंकर ने उसे इतनी स्वच्छन्दता नहीं दी थी। आम तौर पर आज भी हमारे समाज की स्त्रियों की यही स्थिति है। घर में अगर कोई चीज न हो तो वह बाहर लेने नहीं जा सकती है। उसे वह वस्तु मॅंगवाने के लिए घर के किसी पुरुष के आने तक का इन्तजार करना पड़ता है।

प्रेमचंद इस कहानी में सेवती के माध्यम से स्त्रियों की लाचारी पर अपना क्रोध प्रकट करते हैं। वे सेवती के माध्यम से यह भी बताना चाहते हैं कि अगर कोइ बीमार पड़ा हो और उसे डाक्टर के पास ले जाना हो तो ऐसी स्थिति में क्या करना चाहए ? प्रेमचंद उस समय के समाज की कूप-मण्डूकता को दर्शाते हैं। प्रेमचंद साफ रूप से यह दर्शाना चाहते हैं कि एक सामान्य सी दियासलाई के न होने पर घर में अंधेरा छाया हुआ है, खाना भी नहीं बना है क्योंकि दयाशंकर पर्दाप्रथा के हिमायती थे। जिसके कारण अंत में त्योहार के दिन उसे अपने ही मित्र के सामने लज्जित होना पड़ता है। प्रेमचंद का मानना है कि अब वह जमाना गया जब स्त्रियों को बॉधकर रखा जाता था। आज स्त्रियों को भी इतना अधिकार है कि वह आम् इन्सान की तरह घूम फिर सके, बाहर जा सके। प्रेमचंद के ही समय में ऐसी कई औरते थी जो स्वतंत्रता आन्दोलन में शामिल हुई थी जैसे कस्तूरबा गांधी, रमाबाई रानडे, सावत्रीबाई फुले, सरोजनी नायडू आदि। इन वीरांगनाओं ने पर्दे का तथा पर्दाप्रथा का विरोध करके स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया था, जो आज हमारी आदर्श हैं। दयाशंकर अन्त में खुद पर्दाप्रथा का विरोध करता है तथा अपने मित्र आनन्दमोहन को खाना न पकाने का कारण बताते हुए खुद के विचाारों से आने वाले परिवर्तन को उसके सामने

दर्शाता है। आनन्दमोहन को आकाशी भोजन से दुराशा तो जरूर होती है किंतु मित्र के विचार परिवर्तन से वह खुश हो जाता है।

* संयुक्त परिवार की पक्षधर कहानी " बड़े घर की बेटी"

सामंतवाद की घुटन और पूँजीवाद का वर्चस्व यह प्रक्रिया प्रेमचंद के समय में शुरू हो गई थी। ग्राम्य समाज में मुख्य व्यवसाय खेती होने के कारण संयुकत परिवार की प्रथा को महत्व दिया जाता था। खेतीबाड़ी से जो आमदनी होती है, उस पर भी पूरे परिवार का अधिकार होता है और यह बताना कठिन है कि कौन कितना कम या ज्यादा कमाता है। पर पूंजीवादी व्यवस्था के समय अंग्रेजी शिक्षा एवं पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव बढ़ रहा था वही व्यक्ति नौकरी करने लगा था और नौकरी से मिलनेवाली तन्ख्वाह के आधार पर घर मे उसके महत्व को आंका जाने लगा। पश्चिमी संसकृति की वजह से लोगों के विचारों में परिवर्तन आने लगा। वे रूढ़िगत परम्पराओं को छोड़ रहे थे लेकिन साथ ही साथ जो भारतीय संस्कृति के गुण थे वे भी लुप्त हो रहे थे। जैसे बड़ो की इज्जत करना, मॉ-बाप की सेवा करना, संयुक्त परिवार में मिलजुलकर रहना आदि। पहले घर में बड़े-बूढ़े, पिता या बड़े भाई का शासन चलता था। उन्हे शारीरिक श्रम भी कम ही करना पड़ता था। कमोवेश रूप में उन्हें घर का मुखिया या राजा माना जाता था।

धीरे-धीरे पूँजीवाद अपना असर दिखाने लगा। पति-पत्नी, बाप-बेटे, सास-बहू, भाई-भाई के बीच जायदाद या काम इत्यादि को लेकर झगड़े होने शुरू हो गये और इसका परिणाम यह हुआ कि लोग बॅटवारा करने लगे। वैसे तो प्रेमचंद के समय में ही परिवारों के टूटने की प्रक्रिया शुरू हो गई थी। पारिवारिक वरिष्ठता के स्थान पर आर्थिक वरिष्ठता को महत्व मिल रहा था। समय ऐसा भी आया कि जिन मॉ-बाप ने अपने बच्चों को पाला-पोसा था वही बच्चे बड़े होने पर उन्हें बुढ़ापे के समय वृद्धाश्रम में डालने लगे। प्रेमचंद के समय से चली आ रही यह नीति अब तक नहीं बदली। आज भी लोग अपने माता-पिता को वृद्धाश्रम या आधुनिक भाषा में कहें तो "old age Home" में डाल देते हें। पहले के समय में लोगों की यह मान्यता थी कि शहर की लड़कियॉ तथा बड़े घर की लड़कियॉ ज्यादातर घर को जोड़ती है। पर हर जगह ऐसा नहीं होता है।

बड़े घर की बेटी

प्रस्तुत कहानी का प्रथम प्रकाशन उर्दू में इसी शीर्षक से दिसम्बर 1910 में जमाना में हुआ था। तथा प्रेमपच्चीसी और देहात के अफसाने में संकलित है। हिन्दी में मानसरोवर-7 एवं प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियॉ-1 में संकलित है।

इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद संयुक्त परिवार की नींव फिर से डालते हैं तथा यह भी दर्शाते हैं कि बड़े घर की बेटियाँ केवल घर तोड़ती नहीं बल्कि जोड़ती भी हैं। इसी सन्दर्भ में शिवकुमार मिश्र जी कहते हैं कि--" बड़े घर की बेटी प्रेमचंद के रचनाकाल के शुरूआती दौर की कहानी है। प्रेमचन्द की रचनाशीलता के इस शुरुआती दौर को उनकी आदर्शवादी मानसिकता का दौर माना गया है और कहा गया हे कि अपनी सर्जना के परवर्ती दौर में प्रेमचंद आदर्शवादी मनोभूमि से हटकर यथार्थवादी मनोभूमि पर पहुँच गये थे।" 43 यह कहानी प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से एक है। यद्यपि प्रेमचंद को अपने निजी जीवन में संयुक्त परिवार के काफी कटु अनुभव हुए थे, किन्तु फिर भी वे संयुक्त परिवार प्रथा की सामाजिक उपयोगिता और आवश्यकता के प्रति सर्वथा आस्थाहीन नहीं हुए थे। उन्होंने अपनी कई कहानियों में इस प्रथा का समर्थन एवं पुर्नस्थापना का प्रयत्न किया है। बड़े घर की बेटी प्रेमचंद की एक ऐसी कहानी है। जिसकी मुख्य पात्र आनंदी है। आनंदी के पिता एक छोटी सी रियासत के ताल्लुकदार थे। उनकी सात बेटियाँ थीं तीन बेटियों का ब्याह उन्होंने बड़े धूमधाम से किया, लेकिन पंद्रह बीस हजार का कर्ज हो जाने के कारण चौथी बेटी जो आनंदी थी और उनकी सबसे प्रिय बेटी थी, उसके ब्याह में हाथ बटोर लिया। उन्होंने आनन्दी का ब्याह श्रीकंठ सिंह से किया। श्रीकंठ बेनीमाधव सिंह के बेटे थे जो गौरीपुर गाँव के जमींदार थे। किसी जमाने मे रईस थे पर अब उनकी वार्षिक आय एक हजार रूपये है। उनके दो पुत्र- एक श्रीकंठ है, जिसने बी.ए. हिन्दी से किया है और एक दफ्तर में नौकरी करता है। दूसरा बेटा लालबिहारी सिंह जो कुछ नहीं करता है। सिर्फ दूध पीकर शरीर बनाता है। आनंदी जब ब्याह कर आई तो उसने अपना ससुराल अपने घर से बिल्कुल विपरीत पाया। पर वह ससुराल के रंग में रंग गई। किसी को जरा सा भी नहीं लगा कि वह बड़े घर की बेटी है। यहाँ प्रेमचंद ने बड़े घर की बेटी का गुण बताया है कि वह अपने आप को परस्थिति के अनुसार ढाल लेती है। एक दिन दोपहर में लालबिहारी दो चिड़िया लाया। आनंदी ने खाना पका दिया था पर कुछ न बोलकर पाव भर घी बचा था जब उसमें मांस पकाया। लालबिहारी जब खाने बैठा तो दाल में घी न होने का कारण पूछा । तब आनंदी ने बताया कि मांस में घी डालने की वजह से घी न रहा तो उसमें लालबिहारी चिल्लाया और आनंदी को मायके का ताना देने लगा। प्रेमचंद जी इस कथन के माध्यम से यह बताना चाहते हें कि स्त्रियाँ मैके की बुराई नही सह सकती है।--" स्त्री गाली सह लेती है, मार भी सह लेती है, पर मैके की निंदा उनसे नहीं सही जाती।" 44

स्त्री चाहे किसी भी जमाने की क्यों न हो ? वह मायके की निन्दा कभी नहीं सह सकती। चाहे आधुनिक जमाने की ही क्यों न हो ? यह स्त्रियों का स्वभाव होता है। आनंदी ने जब मैके वालों की बात

सुनी तो उसने कहा कि इतना घी तो हमारे यहाँ नोकर खा जाते है। इस पर लालबिहारी चिल्लाया और क्रोधित होकर थाली तो पलट दी पर खड़ाऊँ आनंदी की तरफ फेंका। आनंदी ने उसे हाथ से बचाया तो सिर बच गया लेकिन हाथ में काफी चोट आ गई। इसी ओर संकेत करते हुए डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं कि--" समस्या का केन्द्र यहाँ भी आर्थिक है किन्तु वह उदघाटित होता है मायके और ससुराल की मिथ्या होड़ में। यह एक रूढ़िगत और मनोवैज्ञानिक समस्या है। संयुक्त परिवार, आर्थिक दबाव से टूट रहा था, इसमें कोई सन्देह नहीं है। किन्तु यहाँ तोड़ने वाले उन आर्थिक दबावों की उपस्थिति नहीं है। उपस्थिति मायके ससुराल की होड़ है। फिर संयुक्त परिवार के संस्कार इतनी जल्दी नहीं टूटते। भारत में संयुक्त परिवार सामाजिक मूल्य का दरजा रखते हैं। फलत: 'बड़े घर की बेटी' की मायका ग्रन्थि यदि इस मूल्य के सामने सुलझ जाती है, हृदय -परिवर्तन के द्वारा तो यह हृदय परिवर्तन अस्वाभाविक नहीं।'' 45

श्रीकंठ दो दिन बाद आने वाला था इसलिए आनंदी ने दो दिन भूखे-प्यासे अपने कमरे में बिताए। श्रीकंठ किसी तरह से गाँव वालों से पिण्ड छुड़ाकर घर पहुँचे, वहाँ पिताजी के साथ देश-विदेश की बात की तभी लालबिहारी ने आनंदी की शिकायत की कि वह अपने मायके की धौंस जमाती है। बेनीमाधवसिंह ने लालबिहारी की बात का समर्थन किया। श्रीकंठ जब खा-पीकर कमरे में गया तो उसे सच का पता चला। सुबह उसने अपने पिता से अलग होने की बात करता है पिता अवाक रह जाते है। क्योंकि वह पिता का सदैव आदर करता था तथा स्वयं संयुक्त परिवार का समर्थक था। उसने गाँव में कितने ही घर टूटने से बचाए थे, पर जब उसके मुँह से इस प्रकार की बात आई तो उसके पिता उसको समझाते हुए कहते हैं कि स्त्रियों के पीछे ऐसा नहीं करते है।

प्रेमचंद यह दर्शाना चाहते हैं कि दोनों के बीच हुए विवाद के समय ही यदि एक दूसरे से माफी मंगवाकर बात को शान्त कर दिया जाता तो बात इतनी न बढ़ती। पर वह भी अपने अभिमान में रहे। अलग होने की बात सारे गाँव में फैल गई। उनमें से कई लोग जो अपने घरों में अलग होना चाहते थे पर श्रीकंठ के समझाने पर अलग न हो पाए तो वे आज खुश हो रहे थे। उन लोगों में स्त्रियों और खास कर बहुओं का प्रमाण ज्यादा था। जब लालबिहारी को पता चला कि भैया जिस पर बड़ा प्यार लुटाते थे, जिनका वह आदर सम्मान करता था वह उनका मुँह तक नहीं देखना चाहता है। वह हमेशा उसे नई-नई चीजें लाकर देता था, तो वह रोता हुआ अपने कमरे मे जाता है और सामान बाँधकर भाभी यानी आनंदी को बताता है कि वह जा रहा है। जब आनंदी को पता चला कि श्रीकंठ उससे परिवार अलग करने का निर्णय लिया है तो वह खुद की जबान को कोसने लगती है कि उसने मुँह क्यों खोला ?

आनंदी ने लालबिहारी को रोका तथा समझाया कि उसके मन में उसके लिए कोई मैल नहीं है। इससे श्रीकंठ का दिल पिघल गया और दोनों भाई गले मिले तथा टूटता हुआ घर फिर से जुड़ गया।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY • University of Baroda

यहाँ प्रेमचंद यह बताना चाहते हैं कि बड़े घर की बेटियाँ अपने कुल का नाम रोशन करती है। अपने दायित्व को समझती हैं इसीलिए तो आनंदी ने न केवल दो भाइयों को एक कर दिया पर अपने टूटते परिवार को भी बचाया। आनंदी की यह उदारता देखकर न केवल गाँव वाले पर बेनीमाधव भी खुद कहते हैं कि--" बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती है। बिगड़ता काम बना लेती है।"46 इसी पर शिवकुमार मिश्र जी कहते हैं कि --"कहानी में जो बात प्रेमचंद की बुनियादी सोच के विपरीत लगती है, वह आनंदी के क्षमा दान के उपरांत उसके बारे में उसके श्वसुर की यह टिप्पणी है कि 'बड़े घर की बेटियाँ' ऐसी ही होती है। टिप्पणी यद्यपि आनंदी के श्वसुर की है परन्तु प्रेमचंद उसे कहानी का शीर्षक 'बड़े घर की बेटियाँ' देकर गाढ़ा करते हैं। इससे यह ध्वनि निकलती है, गोया, उन्नत-विचार, आदर्श-चिन्तन समझदारी और उदार हृदयता जैसी बातें 'बड़े घरों' या अभिजात वर्गो की चीज हो, यही इस वर्ग की पहचान हो। जबकि अपने लेखन में बार-बार अभिजात वर्ग की तुलना में प्रेमचंद ने उक्त जीवन-मूल्यों को साधारण वर्गों में ही पाया और उभारा है। मंत्र कहानी इसका प्रमाण है।" 47

* परिवार नियोजन पर आधारित कहानियाँ

आज हमारे देश की प्रगति किसी भी क्षेत्र में हो या न हो एक क्षेत्र ऐसा है, जहाँ हम दिन दूना रात चौगुना बढ़ोत्तरी कर रहे हें और वह क्षेत्र है जनसंख्या का। आज हमारे देश की जनसंख्या एक अरब से भी अधिक है। हमारा देश भौगोलिक दृष्टि से दुनिया में सातवें क्रमांक पर आता है, जबकि जनसंख्या की दृष्टि से दूसरे क्रमांक पर। इसी कारण सरकार ने सभी सरकारी हास्पिटलों में एवं जाहेर जगहो पर 'हम दो हमारे दो' तथा 'हम दो हमारे एक' जैसे सूत्रों का प्रदर्शन किया है। साथ ही साथ मीडिया के माध्यम से गर्भपात तथा गर्भ न धारण करने के कृत्रिम साधनों का प्रचार प्रसार करवा रही है। यह आज की बात है जब मीडिया का जाल देश भर में फैल चुका है। पर प्रेमचंद के समय में जनसंख्या 30-35 करोड़ के आसपास थी। तभी प्रेमचंद ने सीमित जनसंख्या और सीमित परिवार की बात की थी। प्रेमचंद के युग में कृत्रिम साधनों से संतानोत्पत्ति को रोकन की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो गई थी पर रूढ़िगत परम्परा के लोग इसे पाप समझते थे। प्रेमचंद ने संयम को भी एक रास्ता बताया पर वह धारण करना सबके बस की बात न थी। इसलिए प्रेमचंद कृत्रिम साधनों को अपनाने को बुरा नहीं मानते थे। प्रेमचंद का मानना हे कि स्त्री बच्चे पेदा करने की मशीन नही है। इसीलिए उन्होंने 'हंस' मई-1934 में संतान निग्रह और प्राकृतिक

नियम शीर्षक पर सम्पादकीय टिप्पणी में बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि-" इसमें तो किसी को आपत्ति नहीं है कि संतान-निग्रह (परिवार नियोजन) आवश्यक वस्तु है। मतभेद इसी में है कि उद्देश्य ब्रह्मचर्य द्वारा पूरा किया जाए या कृत्रिम उपायों से। अगर ब्रह्मचर्य हो सके तो सबसे उत्तम, लेकिन वह न हो सके तो हम कृत्रिम साधनों को भी बुरा नहीं समझते। कुछ विद्वानों का कथन है कि हमें प्राकृतिक विधान में बाधक न होना चाहिए, क्योंकि इसका परिणाम भीषण होता है। मगर मानव संस्कृति तो प्राकृतिक विधान के विरोध का ही नाम है। अगर हम प्रकृति मार्ग पर ही चलते तो आज भी कंदराओं में रहते और शिकार पर जिन्दगी बसर करते होते। प्रकृति पर विजय पाना तो मानवी सभ्यता का लक्ष्य ही है।"

1. कानूनी कुमार

इस कहानी का प्रथम प्रकाशन हिन्दी में जुलाई 1929 को माधुरी में हुआ था और मानसरोवर-2 तथा प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियॉ-4 में भी इसका संकलन किया गया है।

कहानी के नायक के माध्यम से लेखक कहानी के प्रारम्भ में ही कहता है कि-" इस समाज का इस देश का और इस जीवन का सत्यानाश हो, जहॉ रमणियों को केवल बच्चा जनने की मशीन समझा जाता है। इस बेचारी को जीवन का क्या सुख। कितनी ही ऐसी बहने इस जंजाल में फॅसकर बत्तीस, पैंतीस की अवस्था में जब वास्तव में जीवन को सुखी होना चाहिए, रुग्ण होकर संसार यात्रा समाप्त कर देती है। हा भारत; यह विपत्ति तेरे सिर से कब हलेगी ? संसार में ऐसे पाषाण हृदय मनुष्य पड़े हुए हैं, जिन्हें इस दुखियारियों पर जरा भी दया नहीं आती। ऐसे अंधे, ऐसे पाषाण, ऐसे पाखंडी समाज को स्त्री को वासनाओं की वेदी पर वलिदान करता है, कानून के सिवा और किस विधि से सचेत किया जाय ? और कोई उपाय ही नहीं है। नर हत्या का जो दंड है, वही दण्ड ऐसे मनुष्यों को मिलना चाहिए। मुबारक होगा वह दिन, जब भारत में इस नाशिनी प्रथा का अन्त हो जाएगा-स्त्री का मरण, बच्चों का मरण और जिस समाज का जीवन ऐसी सन्तानों पर आधारित हो, उसका मरण। ऐसे बदमाशों को क्यों न दण्ड दिया जाय ? कितने अन्धे लोग है। बेकारी का यह हाल कि भर पेट किसी को रोटियॉ नहीं मिलती, बच्चों को दूध स्वप्न में नहीं मिलता और ये अन्धे हैंकि बच्चे पर बच्चे पैदा करते जाते हैं। 'सन्तान-निग्रह-बिल' की जितनी जरूरत है, इस देश को उतनी किसी कानून को नहीं।" 48 इस लम्बे संवाद के माध्यम से पुरुषों की विलासिता और बच्चे पैदा करने की प्रवृत्ति पर निन्दा की गई है।

मॉ बाप उन बच्चों का ही भरण पोषण नहीं कर पाते जो इस दुनिया में है, ऊपर से औरतों बच्चे पैदा करने की मशीन समझकर और बच्चे पैदा करते जाते है। आज आप किसी गली कूचे, मुहल्ले या

रोड पर जाय तो आप को कितने ही छोटे बच्चे भीख मॉगते मिलेगें। अगर आप संतान का भरण पोषण नहीं कर सकते तो उन्हें इस दुनिया में लाने का क्या फायदा ?

2. गमी

जिसका प्रकाशन केवल हिन्दी में 31 अगस्त 1929 को मतवाला में और मई 1977 को आजकल में हुआ था। तथा सोलह अप्राप्य कहानियॉ, प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य खण्ड-1 और प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियॉ-4 में संकलित है।

कहानी में प्रेमचंद ने कहानी के पात्र भगीरथ द्वारा कहलवाया है कि --" वही जो सबसे प्यारा मेरा मित्र, मेरे जीवन का आधार, मेरा सर्वस्व, बेटे से भी प्यारा, स्त्री से भी निकट, मेरे 'आनन्द' की मृत्यु हो गई। एक बालक का जन्म हुआ पर मैं इसे आनन्द का विषय नहीं शोक की बात समझता हूँ। आप लोग जानते हैं मेरे दो बालक मौजूद है। उन्हीं का पालन मैं अच्छी तरह से नहीं कर सकता। दूध भी कभी नहीं पिला सकता, फिर इस तीसरे बालक के जन्म पर मैं आनन्द कैसे मनाऊँ। इसने मेरे सुख और शान्ति में बड़ी भारी बाधा डाल दी। मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं कि इसके लिए दाई रख सकूँ। मॉ इसको खिलाये; उसका पालन करे या घर के दूसरे काम करे; फर्ज यह होगा कि मुझे सब काम छोड़कर इसकी सुश्रुषा करनी पड़ेगी। दस-पॉच मिनट जो मनोरंजन या सैर में जाते थे अब इसकी सत्कार की भेंट होगें। मैं इसे विपत्ति समझता हूँ और इसीलिए इस जन्म को गमी कहता हूँ।'' 49

प्रेमचंद यहॉ स्पष्ट करना चाहते हैं कि सामर्थ्य हो कि न हो पर हमें देश के भविष्य को ध्यान में रखकर अपने परिवार को बढ़ाना चाहिए। कानूनी कुमार' में जब कुमार की पत्नी 'सन्तान-निग्रह-बिल' के बजाय जन चेतना को जाग्रत करने पर विशेष बल देती है तब 'कानूनी कुमार इस जागृति के बाद भारत का जो चित्र उभरकर आएगा उसका चित्रण करते हुए कहता है कि--" तब इस देश में सुख और सन्तोष का साम्राज्य होगा, तब स्त्रियों और बच्चों के मुँह पर खून की सुर्खी नजर आयेगी, तब मजबूत हाथ-पॉव और मजबूत दिल और जिगर के पुरुष उत्पन्न होगें।'' 50 यह प्रेमचंद के द्वारा देखे गये भारत का भविष्य का स्वप्न है, परंतु अगर आज वे होते तो इस आधुनिक भारत को देखकर काफी दुखी होते।

* महाजनी सभ्यता का विरोध करती कहानियॉ

प्रेमचंद ने वैसे तो सभी प्रकार के लोगों के बारे में लिखा है पर वे खुद किसानों के बीच पले-बड़े होने के कारण तथा गरीबी एवं दरिद्रता से जिन्दगी गुजारने के कारण किसानों के जीवन और समस्याओं के बारे में प्रथम कोटि की जानकारी थी। इसी कारण प्रेमचंद ने अपने साहित्य का आधार ग्रामीण परिवेश

को रखा है। प्राचीन युग में भारत में कृषक भूमि की उपज का एक निश्चित अंश अधिकारी का था, जो उपज के घटने-बढ़ने के साथ ही साथ घट-बढ़ जाता था। 1857 के विद्रोह के बाद सारे भारत में जब अंग्रेजों का राज्य स्थापित हो गया तब अंग्रेजों ने भारतीय राज्यव्यवस्था में नये परिवर्तन किए जिनके परिणाम दूरगामी आए। जैसे वारेन-हेस्टिंग्स ने सबसे पहले सारी जमीन सरकारी बताकर किसानों को उसकी उपज का 90 फिसदी हिस्सा किराए पर देने की घोषणा की, जो धीरे-धीरे 83 फिसदी, 75 फिसदी, 66 फिसदी और अंत में 1850 में 50 फिसदी तय कया गया। इससे पुश्तैनी जमींदार टूट गये और नए व्यवसायी जमींदारों की उत्पत्ति हुई। सरकार और किसान के बीच अब बिचौलियों की नई फौज खड़ी हो गई। जिनमें पटवारी, महाजन,कारिंदे, जमींदार, पुलिस, वकील का समावेश होता है। इन लोगों के लिए प्रजा दुधारू गाय के समान थी, हर हालत में उनको दुहते रहना उनका काम था। बाढ़ आए, पानी न बरसे, फसल न पैदा हो आदि से उन्हें कोई मतलब नहीं था उन्हें केवल लगान चाहिए था।

प्रेमचंद ने अपने साहित्य के माध्यम से किसानों पर होने वाले अत्याचारों को न केवल समाज के सामने उजागर किया है पर उसका विरोध भी किया है। प्रेमचंद ने अपने साहित्य में 'महाजन सभ्यता' को एक मुख्य स्थान दिया है। गॉव का यह महाजन गॉव के लोगों को दीमक की तरह अन्दर ही अन्दर खोखला कर देता है। महाजन गरीबों को धर्म और समाज के नाम पर उनके घर बार को तो लूटता ही है पर अपनी बातों से गरीबों को झांसा देना, सूद बढ़ाना, सूद न मिलने पर मुफ्त में गधों की तरह काम करवाना और साथ ही साथ परिवार की खुशियों को भी छीन लेता है । महाजन किसान को मजदूर बना देता है। वह बाज पक्षी की तरह है जो अपने शिकार को बिना चूके दबोच लेता है और जब तक उसका पेट न भरे तब तक अपनी पकड़ ढीली नहीं करता। प्रेमचंद ने अपने साहित्य में महाजनों की इस क्रूरता के विरोध के साथ अपनी दो कहानी- 'बॉका जमींदार' और 'उपदेश' में अपने काल्पनिक गॉव के दर्शन भी कराएं हैं। उन्होंने अपने स्वप्न में गॉव की रचना दर्शाए गये गॉव के अनुसार की है पर वास्तविक जीवन में वह मुश्किल है।

1. बॉका जमींदार

जिसका प्रथम प्रकाशन उर्दू में इसी नाम से अक्टूबर 1913 को जमान में हुआ था। इस कहानी का संकलन हिन्दी में इसी नाम से गुप्तधन-1 और प्रेमचन्द की सम्पूर्ण कहानियॉ-1 में किया गया है।

यह एक ऐसी कहानी है, जिसमें प्रेमचंद वास्तव में जमींदार कैसा होना चाहिए उसकी परिभाषा देते हुए लोगों में इस बात की जागृति लाना चाहते हैं कि सिर्फ जमींदार से ही खेतों में सोना नहीं उगता, ये तो

किसान की मेहनत है कि वह खून पसीना एक करके सोने जैसी फसल पैदा करके जमींदार की तिजोरी भरता है। अगर किसान हें तो जमींदार है, वरना जमींदार भी अपनी जमीदारी न कर पाता।

इस कहानी में प्रेमचंद ने ठाकुर प्रद्युम्नसिंह के रूप में अपने विचार प्रस्तुत किए है। ठाकुर प्रद्युम्नसिंह एक प्रतिष्ठित वकील थे जो अपने हौसले और हिम्मत के लिए सारे शहर में प्रसिद्ध थे। उनमें वे सारे गुण थे जो आम् तौर पर एक वकील में होने चाहिए। वे सच्चे गर्व की हमेशा कदर करते थे। ठाकुर की नजर कितने समय से एक उपजाऊ मौंजे पर लगी थी। एक बार उसका जमीदार एक मजदूर के खून केस में फॅस गया। वास्तव में वह मजदूर जमीदार के जुल्म से मर गया था। इसीलिए किसी ने यह केस न लिया। पर मौजे की वजह से ठाकुर ने यह केस ले लिया और केस जीते भी। जिसमें उसे यह जमीन मिल गई। उस मौजे के लोग अपनी बहादुरी के लिए जाने जाते थे। ठाकुर जब ठाट-बाट से मौजे पर गया तो वहॉ के लोगों ने यथाशक्ति उसका आदर सत्कार किया। घी-दूध, लकड़ियों को ढेर कर दिया, पर जब ठाकुर ने तीन साल की पेशगी लगान अभी का अभी मॉगा तो पूरा गॉव लगान देने में असमर्थ रहा। इस पर ठाकुर ने पूरा गांव उजाड़ दिया। यह खबर बिजली की तरह चारों ओर फैल गई। ठाकुर के इन्सान होने पर भी संदेह होने लगा। एक साल बाद कुछ लोग यहॉ फिर रहने लगे क्योंकि जमीन उपजाऊ थी। वहॉ खूब धान उगा। उन्होंने तीन साल की पेशगी चुकाने का निश्चय किया, साल भर बाद दूसरी फसल आई तो ठाकुर उसी ठाट-बाट से गॉव में पहुँचा। लोगों ने उसकी बड़ी खातिरदारी की पर ठंडा पानी न मिलने के कारण उसने पूरा गॉव उजाड़ दिया। सारे शहर में उसकी बड़ी बदनामी हुई। घर से निकलना मुश्किल हो गया। कहानी के इन पहलुओं को देखकर हमें तो यही लगता है कि ठाकुर बड़ा जुल्मी एवं निर्दयी तथा निष्ठुर इन्सान था। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं था। तीन साल तक उस मौजे में कोई न आया। तीन साल के बाद एक बंजारे की टुकड़ी वहॉ आई उन्होंने जमीन देखी तथा मौजे के किस्से भी सुने। वे लोग लोहे की हिम्मत वाले थे। उन्होंने ठाकुर के पास जाकर वहॉ रहने की परवानगी ले ली। उन्होंने गॉव में लक्ष्मी का राज करवा दिया। ठाकुर फिर से उसी ठाट में उस गॉव में गया। ठाकुर के आने की खबर सुनकर सब खुश हुए। ठाकुर की खतिरदारी बूढ़े हरदास ने की, पर हरदास की सेवा भक्ति को ठाकुर ने खुशामद कहा। इसी पर दोनों की बहस हो गई । इस वहस ने एक विराट स्वरूप लिया और ठाकुर ने उन्हें वहॉ से निकल जाने को कहा--" हरदास खड़ा हो गया। गुस्सा अब चिन्गारी बनकर ऑखों से निकल रहा था। बोला हमने इस गॉव को छोड़ने के लिए नहीं बसाया है। जब तक जिएगें, इसी गॉव में रहेगें, यहीं पैदा होगें आकर यहीं मरेंगे। आप बड़े आदमी हैं और बड़ो की समझ भी बड़ी होती है। हम लोग अक्खड़ गंवार हैं। नाहक गरीबों की जान के पीछे न

पड़िए। खून खराबा हो जाएगा। लेकिन आपको यही मंजूर है तो हमारी तरफ से आपके सिपाहियों को चुनौती है, जब चाहे दिल के अरमान निकाल लें।'' 51

यहॉं पर प्रेमचंद यह बताना चाहते हैं कि गरीब किसानों के अन्दर कितना गुस्साा इन महाजनों को लेकर भरा हुआ है। वास्तव में लोग महाजन के खिलाफ आवाज नहीं उठाते, इसीलिए महाजन अपनी मनमानी करते हैं। पर यहॉं पर प्रेमचंद जी बताना चाहते हैं कि सभी को हरदास की तरह चुनौती देकर अन्याय के खिलाफ आवाज उठानी चाहिए। दूसरे दिन हरदास और ठाकुर के आदमियों के बीच मुठभेड़ हुई, जिसमे ठाकुर के आदमी बुरी तरह से घायल हुए। तब ठाकुर ने सबको चौपाल में बुलाये और कहा कि--" मैं ईश्वर का बहुत बड़ा ऋणी हूँ कि मुझे इस गॉंव के लिए जिन आदमियों की तलाश थी वे लोग मिल गये। आपको मालूम है कि यह गॉंव कई बार उजड़ा और कई बार बसा। उसका कारण यही था कि लोग मेरी कसौटी पर पूरे न उतरते थे। मैं उनका दुश्मन नहीं था लेकिन मेरी दिली आरजू यह थी कि इस गॉंव में वे लोग आबाद हों जो जुल्म का मर्दो की तरह सामना करें, जो अपने अधिकारों और रिआयतों की मर्दों की तरह हिफाजत करें, जो हुकूमत के गुलाम न हो, जो रोब और अखित्यार की तेज निगाह देखकर बच्चों की तरह डर से सहम न जाएं। मुझे इत्मीनान है कि बहुत नुकसान और शर्मिन्दगी और बदनामी के बाद मेरी तमन्नाएं पूरी हो गई। मुझे इत्मीनान है कि आप उल्टी हवाओं और ऊँची-ऊँची उठने वाली लहरों का मुकाबला कामयाबी से करेंगे। मैं आज इस गॉंव से अपना हाथ खींचता हूँ। आज से यह आपकी मिल्कियत है। आप ही इसके जमींदार और मालिक हैं। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना हैं कि आप फूले-फलें और सरसब्ज हों।'' 52

ठाकुर का ये जो भाषण है वह दरअसल प्रेमचंद का वक्तव्य है। प्रेमचंद चाहते हैं कि हमारे देश के लोग जुल्म न सहकर उसके खिलाफ आवाज उठाएं। हरदास का जो पात्र है वह इसी पर आधारित है। जो जुल्म को सहता नहीं पर उसका डटकर सामना करता है। ठाकुर के वक्तव्य से सब खुश हुए। हरदास ने उन्हें मालिकत्व न छेड़ने को कहा पर ठाकुर का निश्चय दृढ़ था। वास्तव में यहॉं प्रेमचंद ने प्रद्युम्नसिंह जैसे ठाकुर की कामना की है तथा हरदास जैसे किसानों की मॉंग करते हैं।

2. उपदेश

इस कहानी का प्रथम प्रकाशन उर्दू में 'मिशाले-हिदायत' नामक शीर्षक से मई 1917 में जमाना में हुआ था बाद में पेमबत्तीसी और देहात के अफसाने में संकलित हुई। हिन्दी में मानसरोवर-7 और प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियॉं-2 में भी इसका संकलन किया गया है।

इस कहानी में प्रेमचंद ने एक साथ ऐसे तथ्य को उजागर किया है कि जो लोगों के सामने होते हुए भी उनसे ओझल है। इस कहानी में प्रेमचंद ने अखबारों में लेख लिखकर तथा सोशल सर्विस लीग, फ्री लाइब्रेरी, स्टूडेंट्स एसोशियसन आदि के पदाधिकारी बनकर देशभक्ति और जातिसेवा का स्वांग रचनेवाले नकली नेताओं की पोल खोली है। प्रेमचंद बताना चाहते हैं कि किस प्रकार उंगली पर खून लगाकर शहीद होने वाले नकली देशभक्ति समय आने पर किस प्रकार अपनी जिम्मेदारी से बचकर निकल भागते है। यहाँ पर पंडित देवरत्न शर्मा की बात की गई है, जो शिक्षा एवं कुल दोनों में उच्च हैं। जिनको न्यायशिला गवर्मेन्ट ने एक उच्च पद पर नियुक्त करना चाहा पर उन्होंने अपने स्वार्थ को त्याग कर नौकरी से अलग रहे। जिस पर कालेज में एक ड्रामा भी खेला। शर्माजी अब फ्री लाइब्रेरी के सेक्रेटरी, स्टूडेंट्स एशोशियकसन के सभापति, सोशल सर्विस लीग के सहायक पंत्री और प्राइमरी एजूकेशन कमेटी के संस्थापक थे। वे कृषि संबंधी विषयों पर खूब पत्र लिखते थे, चाहे नयी खाद का आविष्कार हो, या खेती के नये तरीके हो, वे अपने लेखों द्वारा इन बातों को लोगों तक पहुँचाते थे। पर शहर से थोड़ी दूर पर उनका एक बड़ा ग्राम था, उसकी तरफ वह देखते भी नहीं थे, न ही उन्हें अपने आसमियों से परिचय था।

प्रेमचंद ने यहाँ पर एक नेता रूपी इन्सान की सच्चाई दर्शायी है। कोई नेता हो या अध्यक्ष वह सिर्फ बातें बड़ी-बड़ी करता है लेकिन स्वयं कुछ भी नहीं ग्रहण करता है। जैसे इस कहानी के पात्र शर्माजी हैं वे कृषि पर लेख लिखते हैं लेकिन उनको अपने गाँव के किसानों के बारे में कुछ भी नही पता है। उनके मुहल्ले में एक लाला बाबूलाल रहते हैं, जिनकी कुछ जमीन शर्माजी के गाँव के पास है इसी नाते से वह शर्माजी से मिलने आते है, पर शर्माजी को वह पसंद नहीं आते क्योंकि वह रूप, रंग, ज्ञान, वेशा-भूषा आदि से देहाती लगते थे। लेकिन बाबूलाल के लिए वे आदरणीय थे।

एक बार प्रयाग में प्लेग का प्रकोप हुआ। शर्माजी जो सोशल सर्विस लीग के मंत्री थे, जन सेवा, जिनका धर्म था। अपने भाषणों तथा लेखें में जो हमेशा जनसेवा का गान गाते थे वे आज कायर बनकर भाग रहे थे। तभी स्टेशन पर उनको वही वकील मिले जिनके आश्रय में बाबूलाल का निर्वाह होता था। उन्होंने शर्माजी के इस कायरपन पर खूब उलाहना दिया। तथा उसके बाद कभी भी देशभक्त का गान न गाने की हिदायत दी। शर्माजी को इस फटकार से बड़ी ग्लानि हुई। इसलिए जब वे अपने गाँव में गये तो उन्हें फागुन के महीने की सुन्दरता न मोह पाई। वे घर जाकर अपने कमरे में किताबें या पत्र पढ़ते। शर्माजी के घर रोज रात को किसी की डाँट-डपट या रोने चिल्लाने की आवाज सुनाई देती। चाहे वह आवाज घोड़े के घास के लिए हो या लगान के लिए। लेकिन शर्माजी अपने करिन्दों की बात मानकर कुछ

न बोलते। उन्होंने एक बार भी गॉव के चमारों को जाकर यह न पूछा कि तुम्हें घास के पैसे मिले या नहीं। शर्माजी के न पूछने की वजह से वे सच से अन्जान रहते थे।

एक बार वे गॉव की सैर करने निकले जहॉ उन्होंने किसानें की मेहनत का फल यानी अनाज देखा। वे खुश हुए पर वहीं अपने सिपाही देखे तो उन्होंने उनको बुलाकर वहॉ खड़े रहने का कारण पूँछा तो सिपाही ने बताया कि अगर वे खड़े न रहे तो किसान सारा अनाज उड़ा ले जाएं और लगान न मिलेगा। शर्माजी उस बात को सही मानकर किसानों को ही गलत मान लिया और यहॉ भी शर्माजी को सही का पता न चला। फिर भी शर्माजी गॉव को घूमने गये तो उन्हें गंदगी और दुर्गंध के अलावा कुछ भी न दिखा। वे वहॉ से भागे और एक नीम के पेड़ के पास खड़े हो गये। वहीं पर उन्हें बाबूलाल मिले जहॉ उन्होंने स्वच्छता पाई। शर्माजी के पूँछने पर बाबूलाल ने उन्हे बताया कि अपने हिस्से की साफ-सफाई वे खुद करते हैं तथा साफ-सफाई के लिए पुरस्कार भी रखते हैं। बाबूलाल ने यह भी बताया कि किसान बड़े मुटमरद होते हैं। उन्होंने बताया कि जब महाजन अपना सारा काम कारिंदों के भरोसे छोड़ जाते हैं तब ये कारिंदे किसानों को हर बात के लिए चूसते हैं और बिना पैसे के काम करवाते हैं। अपना नजराना भी लेते हैं। इसी कारण किसान छल कपट करते हैं। इसी पर रामदीन गुप्तजी लिखते हैं--" इस कहानी में प्रेमचंद किसानों की वर्तमान दुरवस्था का कारण समाज-व्यवस्था में नहीं बल्कि कर्मपरायण, नीतिज्ञ और विद्वान जमीदारों के अभाव में खोजते है। वे दिखाते हैं कि जमींदार यदि अपने इलाकों की देखभाल कारिन्दों पर न छोड़कर स्वयं करें तो किसानों की हालत बहुत जल्द सुधर सकती है। उपदेश का बाबूलाल प्रेमचंद के इन्हीं विचारों का चाहक है। किन्तु स्पष्ट है कि किसानों की दुर्व्यवस्था के कारणों का यह गॉधीवादी विष्लेषण और समाधान सर्वथा अवैज्ञानिक है। प्रश्न जमींदारों के कर्मपरायण, नीतिज्ञ और विद्वान होने का नहीं वरन उस समाज-व्यवस्था के बदले न बदले जाने का है, जिसने एक अल्पसंख्यक उपजीवी वर्ग को जनता के शोषण की छूट दी गई है।" 53

प्रेमचंद ने बाबूलाल के माध्यम से यह भी बताया कि इस स्थिति को रोकने के लिए महाजनों को किसानों के साथ मित्रता पूर्वक रहना चाहिए। तथा जरूरत के समय उनकी मदद करके उनका आत्मविश्वास जीतना चाहिए। उसी समय एक आदमी लगान आपने आप रखकर जा रहा था। जिसमें शर्माजी को आश्चर्य हुआ। पर वह अपना घमंड न छोड़ सके। उन्होंने अपने तर्क लगाना शुरू किया और कहा कि वे दुनिया में नाम कमाना चाहते हें, इसलिए वह गॉव में नहीं रह सकते।

यहॉ प्रेमचंद ने शहर के पढ़े लिख लोगों की सच्चाई सामने रखी है। शर्माजी जो देशसेवक एवं कृषि सेवक है, वह पत्रो, भाषणों में किसानों के लिए लिख, बोल सकते है पर खुद अपने गॉव में रहकर उन

बातों को ग्रहण नहीं कर सकते, यानी 'हाथी के दांत दिखाने के अलग और खाने के अलग''। जो इस देश की सच्चाई है। शर्माजी जब अपने घर जाते है तो वहाँ वे पुलिस वालों को देखते हैं, जो कि शर्माजी को जानते थे तथा शर्माजी भी उन्हें जानते थे, इसलिए उनका गुस्सा शांत हो जाता है। पुलिस जानती है कि शर्माजी किसानों के हितेच्छी हैं पर उनके गाँव में किसानों की यह हालत देखकर जहाँ चारों ओर किसानों को लूटा जा रहा है वहाँ वे भी पीछे नहीं हटते। दारोगा जुल्फिकार अली खाँ शर्माजी को बताते हैं कि वे इन गाँव के किसानों को नहीं तंग करते जो दिल से ईमानदार हो पर उस गाँव को नहीं छोड़ते जहाँ सभी किसानों को लूटते हो और अभी तो फसलों के दिन हैं तो वे उन्हें कैसे छोड़े। उसी समय डाक आने पर शर्माजी चले गये। पर रात को जब तहकीकात के नाम पर पुलिस ने मासूम किसानों को मारना-पीटना शुरू किया तो शर्माजी से न रहा गया और उन्हें सच का ज्ञान हो गया कि उनके गाँव के किसानों की हालात उनकी वजह से ही खराब है। उन्होंने पुलिस तथा कारिंदों को वहाँ से भगा दिया। इस पर रामदीन गुप्त ने कहा है कि--" पुलिस के हथकण्डों का इतना यथार्थ और व्यंग्यपूर्ण वर्णन प्रेमचंद साहित्य की अपनी विशेषता है। स्पष्ट है कि प्रेमचंद की यह विशेषता उनके प्रगतिशील दृष्टिकोण की परिचायक है।'' 54

शर्माजी अपने गाँव को बाबूलाल के गाँव की तरह बनाने के लिए बाबूलाल के पास गए और बाबूलाल को सब बात बताई तभी बाबूलाल ने बताया कि--" आये दिन ऐसी घटनाएं होती रहती हैं, और कुछ इसी गांव में नहीं जिस गाँव को देखिये, यही दशा है। इन सब आपत्तियों का एक मात्र कारण यह है कि देहातों में कर्मपरायण विद्वान और नीतिज्ञ मनुष्यों का अभाव हैं । शहर के सुशिक्षित-जमींदार जिनसे उपकार की बहुत कुछ आशा की जाती है, सारा काम कारिंदों पर छोड़ देते हैं। रहे देहात के जमींदार सो निरक्षर भट्टाचार्य हैं। अगर कुछ थोड़े बहुत पढ़े भी हैं तो अच्छी संगति न मिलने के कारण उनमें बुद्धि का विकास नहीं है। कानून के थोड़े से दफे सुन सुना लिए हैं, बस उसी की रट लगाया करते हैं।'' 55

यहाँ प्रेमचंद स्पष्ट रूप से उन पढ़े लिखे लोगों पर वार करते हें जो अपना उद्देश्य भूलकर दूसरो को उपदेश देते हें। इसी वजह से किसानों की हमेशा दुर्गति होती है। प्रेमचंद यहाँ स्पष्ट करना चाहते हैं कि किसानों के साथ लूट-खसोट बंद करो और उनके साथ न्याय हो। वे दिन रात मेहनत करते हें, चोटी का पसीना ऐड़ी तक बहाकर अनाज उगाते हैं और इससे सबका पेट भरते हें। फिर यही सबके अगर अन्नदाता किसान ही भूखे क्यों रहें। उनका जीवन सुखी क्यों न हो ? अगर आज किसान मेहनत करना बंद कर दे तो पूरा देश भूखों मरें। महाजन हो या करिन्दे या सरकारी अफसर, ये सब किसानों को लूटते हैं तो फिर किसानों की यह दशा होना स्वाभाविक है। अगर जमींदार बिना कोई स्वार्थ से अपना

कार्य करे तो हर किसान महाजन को राक्षस न समझकर देवता समझेगा। जब शर्माजी को इस तथ्य का पता चला तो उन्होंने बाबूलाल को अपना गुरू बनाया ताकि वह अपना गॉव सुधार सकें।

इस प्रकार इन दोनों कहानियों के माध्यम से प्रेमचंद ने उस गॉव एवं महाजनी सभ्यता की कल्पना की है जो नि:स्वार्थी हो, पर इस स्वार्थी दुनिया में यह होना मुश्किल है, पर नामुमकिन नहीं। इसके लिए हर महाजन और किसान को अपना निजी स्वार्थ छोड़ना पड़ेगा।

* पूँजीपति प्रथा का विरोध करती कहानियॉं

किसी भी देश के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन की आधार शिला वहॉं की आर्थिक व्यवस्था है। देश की आर्थिक परिस्थितियॉं बहुत प्रभावशाली होती है। जिनके आधार पर ही समाज का निर्माण होता है। किसी भी राष्ट्र की स्थिति उसकी आर्थिक दशा में निहित है। ईस्ट इण्डिया कंपनी ने जिस आर्थिक और व्यावसायिक नीति को अपनाया, वह देश में असन्तोष की ज्वाला प्रज्वलित करने में सहायक सिद्ध हुई। अंग्रेजी शासन में मध्यकालीन सामंती व्यवस्था से उद्योग धन्धों का विनाश किया और सम्पूर्ण व्यापार को अपने अधिपत्य में कर लिया। जिससे भारतीय जनता दिन प्रतिदिन अधिक निर्धन होती गई। औद्योगिक विकास ने आर्थिक दृष्टिकोण से समाज में दो वर्ग बना दिए थे, पूॅंजीपति और मजदूर। एक शोषक था तथा दूसरा शोषित। पूॅंजीपति दिन प्रतिदिन धनी हो रहा था और मजदूर निर्धन। पूंजीपति अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए मजदूरों का गला घोंटते थे। मजदूरों की दशा अत्यंत शोचनीय थी। उद्योगपति की दृष्टि मुख्यरूप से धन की तरफ ही होती है। उसके लिए वे सट्टे लगाते हैं। जिसमें वे कभी करोड़पति तो कभी रोडपति बन जाते। पैसा जब तक रहता तब तक लोग उन्हें पूँछते। पर इन सबके बीच मजदूरो की हालत 'कोलहू के बैल' की तरह हो जाती है, जो हमेशा पिसता चला जाता है। यह मजदूर किसी फेक्ट्री का हो या किसी ऑफिस का वह हमेशा पूॅंजीपतियों के द्वारा पीसता ही दिखता है।

1. इस्तीफा

प्रस्तुत कहानी का प्रथम प्रकाशन हिन्दी में दिसम्बर 1928 को भारतेन्दु में हुआ था। बाद में मानसरोवर- 4 तथा प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियॉं-4 में भी इसका संकलन किया गया। उर्दू में इसी शीर्षक से ' प्रेमचालीसी' में संकलित है तथा कुछ अन्य स्थानों पर 'स्तीफा शीर्षक से भी संग्रहित है।

इस कहानी में लाला फतहचंद जी जो एक संयमी साधु है। तथा उनमें तमाम मानवीय अच्छाइयॉं मौजूद हैं पर उन्हें चारों ओर से निराशाएं ही मिलती हैं। वह चाहे दफ्तर हो, परिवार हा, दोस्तों से हो, या फिर शारीरिक या मानसिक ही क्यों न हो ? वे सिर्फ अपनी नौकरी की खैर मनाते थे क्योंकि वे घर में

कमाने वाले केवल अकेले थे और खाने वाले अनेक। इसलिए वे ऑफिस में भी डॉट-डपट पर भी कुछ न बोलते थे। सबका काम करते, तथा बॉस की जी हजूरी करतें वे अपने कार्य के अलावा मुफ्त में ऑफिस के दूसरे कर्मचारियों का भी काम करते, पर दर्जा वही पाते ऊपर से उन्हें मिलती तो सिर्फ बॉस की घुड़कियाँ। यह फतहसिंह का व्यक्तित्व है जिनमें नाम के अनुसार गुण नहीं है। वे बड़े सीधे और शांत प्रकृति के मनुष्य थे। जिसकी वजह से सब उनको दबाते थे, एक बार जाड़ों के दिन में वह दफ्तर से लौट रहे थे और उनकी पत्नी ने उन्हें चाय एवं दालमूठ दी। तभी दफ्तर का चपरासी उन्हें बुलाने आया। साहब को कुछ काम था। यह सुनकर फतहसिंह ने चाय रख दी पर पत्नी के कहने पर जल्दी-जल्दी चाय पी और दालमूठ खायी और चपरासी के साथ भागे। वेसे उनकी उम्र कम थी पर शारीरिक कमजोरी के कारण भाग न सके। जिससे चपरासी पहले पहुँचा और वे बाद में। इस पर साहब जो पहले से ज्यादा नशे में थे उसने चपरासी और फतहसिंह दोनों को डॉट फटकारी और चपरासी को मारने दौड़े वह भाग गया। पर साहब ने खुद फतहसिंह के कान पकड़े और ऑफिस से फाइल लाने को कहा पर कौन सी फाइल यह न बताया। फतहसिंह ने जब फाइल के बारे में पूँछा तो उसे डंडे पड़े।

प्रेमचंद यहाँ यह बताना चाहते हैं कि जो धन से बलवान होता हैं वे पूँजीपति अपने दफतर के मुलाजिमों को अपने पैरों की जूती समझते हैं और उन्हें जब चाहे तब फेंक देते है। पूँजीपति लोग अपने से निम्न लोगों से हमेशा तुच्छता का व्यवहार करते हैं। पर अगर उनमें से किसी की किस्मत चमक जाए और उन्हें धन की प्राप्ति हो जाए तो वे उन्हें अपने साथ जगह देंगे तथा मान सम्मान भी देंगे। फतहचंद को साहब के इस व्यवहार से बड़ा क्रोध आया। वह उन्हें मजा चखाना चाहता था पर अपनी पारिवारिक मजबूरियों के कारण वह रुक गया। फतहचंद ने घर आकर अपनी पत्नी को सब कुछ बताया, सिर्फ इतना ही गलत बताया कि उसने साहब को मजा चखाया। इस बात पर पत्नी खुश होती है। पत्नी की खुशी पर फतहचंद को आश्चर्य होता है। तब पत्नी कहती है कि--" आदमी के लिए सबसे बडी चीज इज्जत है। इज्जत गंवाकर बाल-बच्चों की परवरिश नहीं की जाती।'' 56 इसी सन्दर्भ में शिवकुमार मिश्रजी कहते हैं कि--" प्रेमचंद यहाँ चेखव के आगे जाते हैं, आदमी के मरे हुए स्वाभिमान को फिर से जगता हुआ दिखाते हैं। यह आदर्शवाद नहीं हैं हमारी जिन्दगी का यथार्थ है यह, जिसके तहत हम जीवन की आपाधापी में अपने स्वत्व को भूले हुए लोगों में भी जब तब जीवन के स्पंदनों से भर उठा देखते है। स्थितियाँ आदमी को तोड़ती हैं तो वही उसे उबारती भी हैं। चकमक की चिन्गारी भी जगाती है। अपवादों के बावजूद यह आदमी का सच है, जो भले ही कम उजागर होता हो, अयथार्थ और गढ़ा हुआ नहीं। इतना आदर्श भी न रहे तो फिर जीवन में रहेगा क्या ? प्रेमचंद यथार्थ की जमीन से ही इस तरह के आदर्शों और संकल्पों

को चुनते और अपनी कहानियों में बुनते हैं। आदमियत पर आदमियत की सही पहचान पर वे अपने विश्वास को कायम रखते हैं। स्त्री प्रेमचंद की कहानियों में ज्यादा उज्जवल रूप में आती है। यह उनकी नारी के प्रति सम्मान भावना का साक्ष्य तो है ही वे सदियों से यातना चक्र में पिसती नारी को यथार्थ जीवन स्थितयों के बीच भी उसकी पूरी पहचान के साथ सामने लाना चाहते हैं। स्त्री पक्षधरता के अपने बुनियादी संकल्प के चलते कुछ लोगों को स्त्री के प्रति यह प्रेमचंद का पक्षपात भी लग सकता है, परन्तु जो सदियों से नरक की नियति पाए हुए है, उसके पति यह पक्षपात भी (यदि पक्षपात है) क्या नाजायज है ? '' 57

प्रेमचंद जी यहॉं दर्शाते हैं कि मध्यमवर्गीय एवं गरीब लोगों के लिए पैसे से ज्यादा, उसकी मान-मर्यादा, इज्जत मायने रखती है। वे अपनी इज्जत को जाते हुए नहीं देख सकते क्योंकि वहीं उनके सुख-दु:ख में साथ निभाती है। फतहचंद पत्नी की बात सुनकर जोश में आए और डंडा लेकर साहब को मजा चखाने गए। जब वह साहब के घर बया तो वे खाना खाने बैठे थे। साहब फतहचंद का गुस्सा देखकर समझ गया कि वह मरने मारने पर उतारू है। इसलिए वह प्यार एवं समझदारी से बात करने लगा। साहब ने अपनी गल्ती मानी और बताया कि वह नशे में था। पर फतहसिंह नहीं मानता और डंडे के जोर पर साहब के कान पकड़वाता है तथा साहब के इस्तीफा न मॉंगने पर भी उस जगह काम करना नहीं चाहता है, जहॉं गालियॉं सुनना पड़े और ऐसा कहकर वह स्तीफा दे देता है। इसी सन्दर्भ में मिश्र जी आगे कहते हैं कि--" चेखव का क्लर्क भय की सम्भावित विपत्ति की आशंका से ही मर जाता है, परन्तु प्रेमचन्द की यह कहानी क्लार्क की विवशता या निरीहता में नहीं खत्म होती। वे बाबू वर्ग के साए हुए स्वाभिमान को भी रेखांकित करता है।'' 58

वैसे तो यह कहानी एक सामान्य कहानी है पर यहॉं प्रेमचंद जी यह दर्शाते हैं कि एक सामान्य डीलडौल वाला मनुष्य भी अगर चाहें तो अपने से बलवान इन्सान को पक्के इरादों से आराम से पछाड़ सकता है। अगर भारत का हर मजबूर एवं हर मध्यमवर्गीय इन्सान जो मामूली तनख्वाह पर पूॅंजीपतियों के नौकर है वह एक साथ होकर उनका विरोध करे तो वह भी इस कहानी के साहब की तरह भीगी बिल्ली बन सकता है।

2. पशु से मनुष्य

इस कहानी का प्रथम प्रकाशन हिन्दी में फरवरी 1920 को प्रभा में हुआ था और यह कहानी मानसरोवर-8 तथा प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-2 में भी संकलित है। उर्दू में 'इस्लाह' नामक शीर्षक से अप्रैल 1920 को कहकंशा में प्रकाशित हुई थी।

इस कहानी के विषय में साधू जाधव कहते हैं कि--" पशु से मनुष्य कहानी प्रेमाश्रम' का एक अंश मात्र जैसी लगती है। इसके नायक प्रेमशंकर सहकारी खेती और व्यवहारिक समाजवाद का प्रयोग करते है। समाजवादी समाज में कोई स्वयं को किसी का नौकर नहीं समझता इसलिए सभी कठिन परिश्रम करते हैं। मालिक मजदूर की भावना भरने से द्वेष उत्पन्न नहीं होता।'' 59

कहानी में दुर्गा नामक माली अपनी स्त्री और दो-तीन बच्चों के साथ डॉक्टर मेहरा के यहाँ नौकर है। उसकी तनख्वाह 5 रूपये मासिक है। इस छोटे से वेतन में उसका जीवन निर्वाह नही हो पाता है। इसीलिए पत्नी पड़ोस के लोगों के गेहूँ पीसती थी तथा बच्चे लकड़ी, घास, गोबर उठा लाते। दुर्गा ने डॉक्टर मेहरा को अपना वेतन बढ़ाने के लिए कहा। डाक्टर वेतन वृद्धि को छूत की बिमारी समझते थे। इसलिए दुर्गा अपना निर्वाह चलाने के लिए बगीचे के फल-फूल आदि को चोरी छुपे बाजार में बेचता था। डाक्टर महोदय को बागबानी का बड़ा शौक था इसलिए उन्होंने अपने बगीचे में नाना प्रकार के फूल पत्ते तथा अच्छे-अच्छे नस्ल के फलों के पौधे लगवाये थे। वे ये फल खुद न खाकर दोस्तों को बुलाकर दावत उड़ाते। गर्मियों में उनके बगीचों में सुफेदे (आम की एक जाति) के वृक्ष पर बीस पच्चीस सुफेदे आए थे, जो अब तक के सबसे अच्छे थे। इसलिए उन्होंने अपने मित्रों को दावत दी पर दूसरे दिन जब सारे मित्र आए तो वे उन्हें सुफेदे के वृक्ष के पास ले गये जहाँ एक भी सुफेदा नहीं था। इस पर डाक्टर को बड़ी शर्मिन्दगी महसूस हुई पर मित्रों ने सान्त्वना दी और आम की दूसरी जाति के फल खाकर चले गये। दुर्गा की इस हरकत से उन्होंने उसे नौकरी से निकाल दिया। यहाँ तक की कहानी सामान्य लगती है कि मालिक से सामान्य वेतन पाने की वजह से नौकर का चोरी करके गुजारा चलाना है। लेकिन चोरी में पकड़े जाने पर उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है। आगे प्रेमचंद उस भावना को उजागर करते हैं जो वास्तव में आज के जमाने में सबसे जरूरी है। कई मास के बाद डाक्टर मेहरा बाबू प्रेमशंकर जो बड़े संतोषी, सरल हृदय के मनुष्य थे तथा अमेरिका में कई साल रहने के बाद भारत में आए है और मार्क्सवादी विचारधारा के रखने वाले है। उनके वहाँ वे बागों की कलम तथा अच्छी नसल लेने गये। वैसे प्रेमशंकरजी को भी बागबानी का शौक था। जब डाक्टर वहाँ गये तो वहाँ उन्होंने दुर्गा को देखा और उन्होने अपने यहाँ हुए किस्से का जिक्र प्रेमशंकर से किया। उस पर प्रेमशंकर ने दुर्गा के बारे में बताया कि वह अच्छा आदमी है। वेतन के बारे में पूँछने पर उसने बताया कि यहाँ किसी का वेतन तय नहीं है महीने भर के खर्च के बाद जो बचता है वह दस रूपये प्रति सैकड़ा के हिसाब से धर्मादा में जाता है बाकी वहाँ उनको मलाकर सात लोग है वे बाँट लेते है। 20 रूपये आते है। डाक्टर साहब यह सुनकर आश्चर्य में पड़ गये। प्रेमशंकर कहता है कि--" जहाँ कोई मालिक होता है और दूसरा उनका नौकर तो

उन दोनों में तुरंत द्वेष पैदा हो जाता है। मालिक चाहता है कि इससे जितना काम लेते बने, लेना चाहिए। नौकर चाहता है कि मैं कम से कम काम करूँ उसमें स्नेह तथा सहानुभूति का नाम तक नहीं होता । दोनों यथार्थ में एक दूसरे के शत्रु होते हैं। इस प्रतिद्वन्दिता का दुष्परिणाम हम और आप देख ही रहें हैं। मोटे और पतले आदमियों के पृथक-पृथक दल बन गये है और उनमें घोर संग्राम हो रहा है।'' 60 यहाँ प्रेमचंद ने हमारे देश की सच्चाई को प्रेमशंकर की जबानी साफ-साफ दर्शाया है। इस औद्योगीकरण के युग ने लोगों में प्रेमभाव घटाकर द्वेष भाव उत्पन्न कर दिया है। आज इन्सान पैसों के लिए अपने माँ-बाप का भी खून कर दे रहा है। प्रेमचंद के समय में जो हो रहा था वह आज बल्कि उससे बढ़कर भी हो रहा है। समाज में मानवीय मूल्यों का कोई स्थान नहीं हैं। प्रेमशंकर की बातें सुनकर डाक्टर साहब उन्हें सोशलिस्ट मानते हे पर प्रेमशंकर उससे इन्कार करके खुद को केवल न्याय एवं धर्म का दीन सेवक बताते हुए कहते हैं कि--" यदि एक मजदूर पांच रूपया में अपना निर्वाह कर सकता है, तो एक मानसिक काम करने वाले प्राणी के लिए इससे दुगुनी-तिगुनी आय काफी होनी चाहिए और वह अधिकता इसलिए कि उसे कुछ उत्तम भोजन-वस्त्र तथा सुख की आवश्यकता होती है। मगर पांच और पांच हजार, पचास और पचास हजार का अस्वाभाविक अंतर क्यों हो ? इतना ही नहीं। हमारा समाज पाँच और पाँच लाख के अंतर का भी तिरस्कार नहीं करता, वरन् उसकी और भी प्रशंसा करता है।'' 61

यह आज का नग्न सत्य है, जो आज भी उसी रूप में चला आ रहा है। आज इन्सान को पाँच लाख क्या पाँच करोड़ भी मिल जाए तो भी उसे सन्तोष नहीं है। यही स्थिति प्रेमचंद के समय में भी थी।

प्रेमचंद इस कहानी में प्रेमशंकर के माध्यम से दर्शाना चाहते हैं कि हर इन्सान जो मेहनत करता है उसे उसकी मेहनत का फल मिलना चाहिए। अगर कहीं बढ़ई, किसान, जुलाहा, लुहार, नाई, धोबी आदि अपना-अपना काम छोड़ देंगे तो पूँजीपतियों का काम कैसा चलेगा। लेकिन यही पूँजीपति लोग जब गरीबों को वेतन देने की बात आती है तो अपना हाथ पीछे कर लेते हैं। जिनकी वजह से उनकी तिजोरी भरी हुई है उसी के साथ इतना अन्याय, इसी कारण आज चोरी, राहजनी, लूटपाट आदि की नौबत आ गई है। जिसका परिणाम आम् आदमी को भुगतना पड़ता है। अगर मजदूरों को उनकी मजदूरी सही ढंग से दी जाए तो चोरी, लूटपाट जैसी अनीतियाँ अपने आप बंद हो जाएगीं। डाक्टर साहब को प्रेमशंकर की बात अच्छी न लगी, पर उन्होंने सिर्फ इतना कहा कि अभी तो आपने पशु को मनुष्य बना दिया है पर जन्म के संस्कार को कोई नहीं बदल सकता। यहाँ प्रेमचंद कहना चाहते हैं कि अगर समाज में श्रम विभाजन के अनुसार हर इन्सान को वेतन मिले तो कभी मालिक और मजदूर के बीच मन मुटाव या भेदभाव नहीं

रहेगा, वे एक परिवार की तरह जी सकेंगे। प्रेमचन्द ने "डामूल का कैदी" कहानी में गोपीनाथ एवं कृष्णचंद नामक मजदूर एवं सेठ खूपचंद जो मिल मालिक है , उनके माध्यम से इसी सभ्यता को उजागर किया है तथा मजदूर की स्वामिभक्ति की झलक भी इस कहानी में दिखाने का प्रयत्न किया है।

* स्वाभिमान परक कहानियाँ

प्रेमचंद मूलत: यथार्थवादी कलाकार थे। उसके साथ-साथ उन पर उस युग के आदर्शवाद का प्रभाव भी अवश्य था। प्रेमचन्द गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित थे। प्रेमचंद ने देखा कि भारतीय जनता प्राचीन आदर्श और परम्परा से जकड़ी हुई है। वह अभी भी दास परम्परा से बाहर नहीं आ पा रही है। वही मालिक के सामने झुकना, सलाम करना, जमींदारें की जी हजूरी करना, अफसरों की चापलूसी करना आदि से जनता आज भी उबर नहीं पाई है। भारतीय जनता में आत्म सम्मान जैसी कोई चीज है ही नहीं। जो कुछ उनका बचा खुचा आत्म सम्मान था भी उसे अंग्रजों ने समाप्त कर दिया। अंग्रेजों ने भारतीयों को शिक्षा भी इतनी ही दिलवाई थी कि जिससे वे मात्र उनके नौकर तक बने रह सकें। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि भारतीय सामाजिक रूढ़ियों, परम्पराओं एवं अंग्रेजों की दमन नीति ने भारतीय जनता को दब्बू बना दिया था। गाँव में कारिन्दे, जमींदार, महाजन आदि और शहर में पूँजीपति वर्ग एवं गोरे भारतीय प्रजा को दबाते तथा उनका शोषण करते थे। इन लोगों के लिए भारतीय जनता का अपमान करना आम् बात हो गई थी। इस प्रकार शोषण के कारण भारतीय जनता अपना स्वाभिमान खो चुकी थी और अंग्रेंजों द्वारा जुल्म गुजारे जाने पर भी वह विद्रोह नहीं कर पा रही थी। भारतीय जनता का आत्मसंचार पूर्ण रूप से टूट चुका था। प्रेमचंद ने अपने समय में भारतीय समाज की इस विडम्बनाओं को देखा तथा अपने जीवनकाल के दौरान अनुभव भी किया। यही स्थिति हमारे यहाँ नारियों की भी थी। पुरुष प्रधान देश में नारियों को पुरुष के सामने कुछ भी कहने का अधिकार नही है। शास्त्रों में पति परमेश्वर की उक्ति प्रचलित है इसलिए धर्मभीरू औरतें पति के जुल्म या अत्याचार करने पर भी उनके समाने आवाज नहीं उठाती तथा पति के द्वारा किए गये जुल्म को सहती रहती है। पुरुष द्वारा दिए गये हर जुल्म को वे अपना भाग्य समझती थी। नारी को पुरुष अपने पैरों की जूती समझता था। पुरुष नारी को मारता पीटता था। इसी वजह से स्त्रियों में भी स्वाभिमान जैसा कुछ न रह गया था। सास, श्वसुर, ननद, पति, जेठ, जेठानी आदि के ताने सुन-सुनकर वह यह भूल गई थी कि उसका भी कोई अस्तित्व है।

प्रेमचंद भारतीयों में स्वाभिमान का संचार करना चाहते थे क्योंकि उनको पता था कि अगर मनुष्य में स्वाभिमान का संचार हो जाएगा तो वह अपना अपमान बचाने के लिए किसी भी कार्य को सरलता पूर्वक करने के लिए प्रयत्न करेगा। इसीलिए प्रेमचंद ने भारतीयों में उनके खोए हुए स्वाभिमान को जगाने के

लिए अपने साहित्य के माध्यम से यथाशक्ति प्रयत्न किया। उनकी दो कहानियॉ 'घमंड का पुतला' तथा 'शान्ति-1' इसी प्रकार की कहानियॉ हैं जहॉ प्रेमचंद ने भारतीय जनता के स्वाभिमान जगाने की बात की है।

1. घमंड का पुतला

इस कहानी का प्रकाशन सर्वप्रथम उर्दू में 'सरे-पुरगुरूर' नामक शीर्षक से अगस्त 1916 में 'जमाना' में हुआ था तथा बाद में प्रेमबत्तीसी में भी इसका संकलन किया गया । हिन्दी में 'गुप्तधन-1 और प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियॉ-1' में भी इसका संकलन किया गया है।

प्रस्तुत कहानी में स्वयं को लेखक एक मजिस्ट्रेट के रूप दर्शाते हैं। एक बार लेखक अपनी फौज लेकर दौरे पर निकले थे। वहॉ वे कई गॉव में घूमे, जहॉ लोगों की खातिरदारी देखकर वे तंग आ गये थे और वे मन में सोचते कि काश इन खुशामदी आदमियों की सूरत न देखनी पड़े। क्योंकि उन्हें पता था कि यह जो भी आवभगत का खर्च है वह सब गरीबों पर ही पड़ेगा। एक बार जब उनका कैंप सरयू नदी के किनारे लगा तो जमींदार ने उनकी खातिरदारी करने से मना कर दिया, तो उनको क्रोध आया पर नौकरों की बात न मानकर सिर्फ इतना कहा कि ' गॉव से खाना पकाने का सामान लाओ और खाना पकाओ'' एक हप्ता गुजर गया फिर भी वहॉ का जमींदार मुझसे (लेखक) से मिलने न आया। काफी लोगों ने मुझे इशारों में समझाया कि मैं इस गॉव में पड़ाव न डालूँ, पर मेंने लश्कर की बात मानकर इस गॉव में पड़ाव डाला।, जिससे मुझे यह कड़वा अनुभव हुआ। एक दिन सुबह में कुंवर साहब के घर पहॅचा। मेंने पहले ही उन्हें खबर पहुँचा दी थी, इसलिए कुँवर साहब दीवान खाने में ही मिले। कद काठी में लम्बे, लाल आखें एवं सर मुड़वाया हुआ और गले में रुद्राक्ष की माला पहनी हुई थी। पुरुषोचित अभिमान उनके मुख से साफ झलकता था। कुँवर साहब से पता चला कि उनका वंश किसी महान ऋषी से जुड़ा हुआ है, जिसका उन्हें गर्व है। वे खानदानी रईस हैं और पुरखों के जंगली कारनामे उनकी शान है। छोटी सी मुलाकात में मुझे इतना तो पता चला कि वह बड़ा समझदार और दूरदर्शी आदमी है। मैं आए दिन उनके यहॉ आता जाता रहता था। यहॉ पर लेखक ने कुँवर साहब का परिचय अपने अनुभवों के आधार पर बताया है कि उनके मुख से पुरुषोचित अभिमान झलकता है जो दो घटनाओं के माध्यम से पता चलता है, वे दो घटनाएं इस प्रकार हैं--

पहली : बरसात में जब सरयू नदी में बाढ़ आयी तब उसके किनारे के कई गॉव बरबाद हो गये। जानहानि के साथ-साथ खेत-खलिहान भी बरबाद हो गये। सरकार ने सभी गॉव वालों को आदेश दिया कि वे उनके बनाए गये कमीशन के अनुसार अपने नुकसान को विस्तार से पेश करे तथा उसका सबूत दें।

सिवरामपुर के महाराज साहब इस कमीशन के सभापति थे। कमीशन उनको भरपाई करेगा। सभी गॉवो के महाजनों ने खुशामत करके अपने गॉव के नुकसान का पैसा निकलना दिया पर कुँवरसाहब जो किसी के सामने झुकते नही थे वे किसी की खुशामद कैसे करते ? इसी कारण उनके गॉव में कोई राहत न मिली। जिसके कारण वहॉ के किसान निराश हो गए, पर कुँवरसाहब ने ऐलान किया कि उनका सारा लगान माफ है।

इसके माध्यम से प्रेमचंद ने हमारे देश की उस दबी हुई हकीकत को बयान करना चाहा है जो आज हमारे देश की दुर्गति का सबसे बड़ा कारण है। वह है रिश्वत लेना और देना तथा किसी की खुशामद करना। प्रेमचन्द के समय में भी लोग अपने काम निकलवाने के लिए लोगों की चापलूसी करते थे तथा उपहार स्वरूप कीमती चीजें भी भेंट करते थे, जिससे उनका काम आसानी से निकल जाए। उस जमाने में यह सब चीजें कुछ हद तक सीमित थी लेकिन आज असीमित हो गई है। जहॉ कहीं भी छोटी जगह से लेकर बड़ी जगह तक जाओ सभी अपना उल्लू सीधा करने में लगे दिखाई देते हैं। इसके लिए बाहर के लोग तो ठीक लोग अपने परिवार तक को भी नहीं छोड़ते हैं। प्रेमचंद कुँवरसाहब के माध्यम से चापलूसी का खुलकर विरोध किया है और एक आदर्श रखने का प्रयत्न किया है।

दूसरी : दूसरी घटना उस समय की है जब कवि शंकर जो यूरोप और अमेरिका में अपने काव्यों का जादू बिखेर रहे थे और उनको सम्मान भी मिल रहा था। सम्मान पाकर जब वे अयोध्या लौटे तो उनके सम्मान में अयोध्या वासियों ने जलसा रखा और मुझ जैसे लेखकों को जलसे के पांडाल में शंकर जी का एड्रेस करने का अवसर प्राप्त हुआ। मैंने अपने भाषण में यह कहा था कि --" सच्ची श्रद्धा से तुम्हारे पैरों पर सिर झुकाते हैं ---।" 62 तभीं पांडाल में से कुँवसाहब उठकर जाते हुए मैंने देखा। मुझे बुरा भी लगा और उनकी अशिष्टता का कारण सभा के अंत में पूँछा, तो उन्होंने कहा कि --" मैं शंकर की कविता का प्रेमी हूँ, शंकर की इज्जत करता हूँ, शंकर पर गर्व करता हूँ, शकर को अपने और अपनी कौम के ऊपर एहसान करने वाला समझता हूँ, मगर इसके साथ ही उन्हें अपना आध्यत्मिक गुरू मानने या उनके चरणों में सिर झुकाने के लिए तैयार नहीं हूँ।" 63 यह एक स्वाभिमानी व्यक्ति ही कह सकता है। आज हम देख रहें हैं कि लोग हीरो-हीरोइनों को भगवान का दर्जा देकर उनकी पूजा करने लगे हैं। उनके मिलने के लिए न जाने कितने प्रयत्न करते है। वे यह क्यों भूल जाते हैं कि वे लोग भी एक इन्सान हैं, वे हमारे सुख दुख में काम आने वाले नहीं हैं। हमरा दुख तो केवल भगवान दूर करेगा हम क्यों न उसके सामने नतमस्तक हों ? कुँवर साहब की बात से इतना तो पता चल गया कि वह घमंड का पुतला है, लेकिन मुझे उस समय का इंतजार है जब वह पुतला झुकेगा। लेकिन मेरी सोच तब गलत

साबित हुई जब में फागुन महीने में अपना दौरा खत्म करके सदर लौटते समय कुँवर साहब से मिलने गया, उस दिन पूरनमासी थी। वहॉ मैंने देखा कि एक वृक्ष तले एक आदमी एक साधू के पैर चूमता था और उसे अपनी ऑखों में लगाता था, जब मैंने देखा कि वह झुका हुआ आदमी कुँवरसिंह है तो मैं आश्चर्य चकित रह गया और मेंने सोचा कि --" वह माथा जो एक ऊँचे मंसबदार के सामने न झुका, जो एक प्रतापी वैभवशाली महाराजा के सामने न झुका, जो एक बड़े देश प्रेमी कवि और दार्शनिक के सामने न झुका, इस वक्त एक साधू के कदमों पर गिरा हुआ था। घमंड, वैराग्य के सामने सिर झुकाए खड़ा था।'' 64 मुझे उनकी भक्ति पर नाज होने लगा और उनके पैरों पर गिरकर मैंने कहा कि--" वैभव और प्रताप कमाल -- और सोहरत यह सब घटिया चीजें हें, भौतिक चीजे हैं। वासनाओं में लिपटे हुए लोग इस योग्य नहीं कि हम उनके सामने भक्ति से सिर झुकाएं। वैराग्य और परमात्मा से दिल लगाना ही वे महानगुण हैं जिनकी ड्योढ़ी पर बड़े-बड़े वैभवशाली और प्रतापी लोगों के सिर भी झुक जाते हैं। यही ताकत है जो वैभव और प्रताप को घमंड की शराब के मतवालों को और जड़ाऊ मुकुट को अपने पैरों पर गिरा सकती हे। ये तपस्या के एकांत में बैठने वाली आत्माओं ! तुम धन्य हो कि घमंड के पुतले भी तुम्हारे पेरों की धूल को माथे पर चढ़ाते हैं।'' 65

यहॉ पर प्रेमचन्द ने यह दर्शाया है कि कृत्रिम चीजों के सामने अपना सिर झुकाने का मतलब हे कि आपका भगवान पर भरोसा नहीं है। इन्सान को अगर अपने स्वाभिमान को खोकर दूसरों के सामने झुकना पड़े तो आप दूसरों की नजरों में तो गिरते ही हैं पर साथ ही साथ अपनी नजरों में भी इन्सान गिर जाता है। लेखक कहानी के माध्यम से यह बताना चाहते है कि इन्सान को अभिमान नहीं करना चाहिए क्योंकि अभिमान तो महाप्रतापी राजा रावण का भी नही टिका तो हम लोंगों का क्या टिकेगा ? पर हमें स्वाभिमान को नही छोड़ना चाहिए।

2. शान्ति - 1

इस कहानी का प्रथम प्रकाशन उर्दू में ' बाजयाफ्त' नामक शीर्षक से अगस्त 1920 को प्रेमबत्तीसी में हुआ था। हिन्दी में मानसरोवर -1 तथा प्रेमचन्द की संपूर्ण कहानियॉ-2 और अंतिम शान्ति नामक शीर्षक से नारी जीवन की कहानियॉ में भी इसका संकलन किया गया है।

प्रेमचंद नारी जीवन की विवशताओं और विसंगतियों की प्रतिबद्धता पर हमेशा लिखते रहे हैं। इस कहानी में भी उन्होंने नारी जीवन के दुखद पहलू को उजागर करना चाहा है। कहानी गहरी मानवीय संवेदनाओं से सराबोर है। कहानी मे प्रेमचद कहानी के प्रमुख पत्र स्वर्गीय देवनाथ के सच्चे मित्र दर्शाए गए है। प्रेमचंद ने देवनाथ को अपना परम प्रिय मित्र सहृदयी, स्वच्छन्द प्रकृति उदार और मित्रों पर प्राण

देने वाला दिखाया है। उनकी पत्नी गोपा भी इसी सांच में ढली हुई थी। देवनाथ चालीस तक भी नहीं पहुॅंच पाए थे कि उनका देहांत हो गया। मैंने जब यह समाचार सुना तो उनके घर दिल्ली गया और देखा कि घर, बर्तन तथा उनकी पत्नी गोपा एवं बेटी सुन्नी के अलावा उनके पास कुछ भी नहीं बचा था। देवनाथ के मित्रों ने उनका परिवार चलाने के लिए स्थायी धन जमा किया था तथा घर का एक हिस्सा भाड़े पर दे दिया था। इसके बाद मुझे कारोबार के चक्कर में बिलायत जाना पड़ा, जहॉं मुझे पॉंच साल लग गये। गोपा के पत्र आते रहते थे, जिससे मुझे पता चला कि वह खुश है, पर वास्तविकता यह न थी। मेरे एक मित्र के पत्र से मुझे पता चला कि उनकी स्थिति बड़ी दयनीय है। मैं विलायत से लौटते ही सीधे दिल्ली गया। वहॉं मैंने देखा कि गोपा घुल गई है, किराएदार कब का घर छोड़कर जा चुका था और दूसरा किराएदार नहीं मिला था तथा अब वह सिलाई का काम कर रही थी। सुन्नी भी यौवनावस्था में प्रवेश कर चुकी थी। विलायत से सीधे वहॉं जाने पर गोपा ने मुझे उलाहना भी दिया। मेरे जलपान करने के बाद उसने बताया कि लाला मदारीलाल जो पहले इंजीनियर थे, जो आज पेंशन पाते हैं, उन्होंने अपने बेटे केदार के लिए सुन्नी का हाथ मॉंगा है। मैं दंग रह गया क्योंकि मदारीलाल बहुत बड़े आदमी थे तथा लोग उन्हें दुर्जन भी कहते थे। साथ ही वे बड़े लालची भी थे लेकिन गोपा के कहने पर कि वे बड़े सज्जन हैं, कभी -कभी खबर भी पूॅंछने चले आते हैं। खास करके गोपा के मन में सुन्नी के ब्याह की बात बैठ गई थी।

मैं दूसरे दिन लाला मदारीलाल के घर गया। लाला मदारीलाल और उनके बेटे केदार के साथ बातचीत करने पर मेरे मन का बोझ हल्का हो गया। बातों से मुझे गुणी एवं भले इन्सान लगे। चार महीने के बाद विवाह निश्चय हुआ। वे चार महीने सुन्नी के विवाह की तैयारी में निकाले। सुन्नी के कपड़े-लत्ते, गहने, खाने-पीने का सामान, घर की सजावट आदि सभी गोपा ने अपने हाथें से किया। सुन्नी के विवाह में मुहल्ले वाले ने खुद की बेटी समझकर हर तरह की मदद की। गोपा कर्ज समझकर लेती, देने वाले दान समझकर देते। जून में ब्याह हो गया। गोपा ने अपनी हैसियत से बहुत ज्यादा दिया तथा सुन्नी को अपने पिता की कमी न खलने दी।

यहॉं तक कहानी में हमे एक सामान्य परिवार के कष्टों एवं मित्रों की कसौटी की कहानी दिखती है लेकिन प्रेमचंद ने कहानी के दूसरे पड़ाव में कहानी की आत्मा को दर्शाया है। यहॉं पर प्रेमचंद समाज की उस खोखली परम्परा को तोड़ते हैं, जहॉं पति को परमेश्वर समझकर उसकी पूजा की जाती है। वैदिककाल से पति नामक प्राणी नारी को सामाजिक, आर्थिक, मानसिक एवं शारीरिक रूप से चूसता है और नारी उसे अपनी किस्मत समझकर सहा करती है। प्रेमचंद ने भारतवर्ष की हर नारी को इस कहानी की पात्र

'सुन्नी' के माध्यम से यह दर्शाना चाहा है कि हर बार नारी ही क्यो अपमान सहे ? जबकि उसकी कोई गलती नहीं है। हर इन्सान का स्वाभिमान होता है, जिससे नारी भी अछूती नहीं है। अगर पुरुष को अपना स्वाभिमान प्यार है तो ये क्यों भूल जाते है कि नारियों को भी वह प्यारा है। आज तक भारतीय नारी अपना मान, सम्मान, छोड़कर सारी यातना सहती आई है, इसलिए पुरुष भी उसे दबाते गये लेकिन प्रेमचंद यह बतातें है कि अब लोगों में नवजागृति का संचार हो गया है, उन्हें सही गलत का फर्क पता है और अब नारी भी अपने स्वाभिमान के लिए खुलकर लड़ रही है। जाड़े के महीने में जब दिल्ली गया तो पता चला कि सुन्नी के सास ससुर अच्छे हैं, पर पति अच्छा नहीं है। मैंने गोपा से सुन्नी को समझाने को कहा, तब गोपा ने कहा कि--" सुन्नी फूहड़ होती, कटुभाषिणी होती, आरामतलब होती तो समझती भी। क्या यह समझॉऊ कि तेरा पति गली-गली मुंह काला करता फिरे फिर भी तू उसकी पूजा किया कर ? मैं तो खुद यह अपमान न सह सकती। स्त्री पुरुष में विवाह की पहली शर्त यह है कि दोनों सोलहों आने एक दूसरे के हो जाएँ। ऐसे पुरुष तो कम हैं, जो स्त्री को जौ भर विचलित होते देखकर शांत रह सके, पर स्त्रियॉ बहुत हैं, जो पति को स्वच्छन्द समझती हैं। सुन्नी उन स्त्रियों में नहीं है, वह अगर आत्म समर्पण करती है, तो आत्म समर्पण चाहती भी है, और यदि पति में यह बात न हुई तो वह उससे कोई 'सम्पर्क न रखेगी , चाहे उसका सारा जीवन रोते कट जाय।'' 66 इसी पर डॉ. नूरजहॉ कहती हैं कि--" समाज में पुरुष कितना ही अत्याचारी दुराग्रही, अनेक अवगुणों से सम्पन्न हो समाज उस पर उंगली न उठायेगा, उसका प्रत्येक व्यवहार क्षम्य है, परन्तु स्त्री में तनिक भी त्रुटि होने पर एक जटिल समस्या है। इसका समाधान ढूँढ़ना नितान्त असम्भव है। 'शान्ति' में विवाह के पश्चात् समाज की इसी कुरीति पर प्रेमचन्द ने दृष्टिपात किया है।'' 67

यहॉ पर प्रेमचंद ने एक मॉ रूपी नारी को अपनी बेटी के प्रति पक्ष खींचना तथा समाज की उस सच्चाई को दर्शाया है जहॉ समाज ने नारी और पुरुष में कितना अंतर रखा है। जहॉ पुरुष हर बात में हर कार्य के लिए स्वच्छन्द हैं वहीं स्त्री को घर की चहरदीवारी में घुट-घुटकर क्यों मरना पड़ता है। आत्म सम्मान से भरी सुन्नी अपने घर आकर अपना सारा सामान कपड़े गहने रख जाती है, तथा अब एक विधवा जैसा जीवन व्यतीत करने लगती है। मैंने गोपा को सांत्वना देकर दूसरे दिन लाला मदारीलाल के घर गया। वहॉ मुझे केदार और लाला मदारीलाल दोनों मिल जाते हैं। केदार मुझे बड़ा विवेकी लगा। उसके जाने के बाद मदारीलाल से बात करने पता चला कि उन्होंने अपना सारा जीवन धन संचय करने में लगाया और बेटा लूटाने में लगा रहा है। वह भी विलासिता, ड्रामा, शराब में। मदारीलाल को जब यह पता चला तो उन्होंने अपने बेटे की शादी सुन्नी से करवानी चाही जो उन्हें पसंद आ गई थी। उन्होंने

सोचा था की पत्नी के आ जाने के बाद वह सुधर जाएगा। पर सुन्नी स्वाभिमानी, आदर्शवादिनी, हठीली और अबोध थी। वह समझौता करना न जानती थी। लोहा लोहे को नहीं काटता। दोनो आपस में लड़ गए वह उसे अभिमान से पराजित करना चाहती थी और वह उपेक्षा से। मैंने सुन्नी को समझाना चाहा पर वह मेरी एक न सुनी, उसने कहा कि--" मैं उस जीवन से मृत्यु को कहीं अच्छा समझती हूँ, जहाँ अपनी कदर न हो। में व्रत के बदले में व्रत चाहती हूँ। जीवन का कोर्द दूसरा रूप मेरी समझ में नहीं आता । इस विषय में किसी तरह का समझौता मेरे लिए असम्भव है। नतीजे की मैं परवाह नहीं करती।'' 68

प्रेमचन्द सुन्नी के माध्यम से एक नारी के आत्म सम्मान की लड़ाई को दर्शाना चाहते है। अगर पति अपने मन के हिसाब से कुछ भी अनैतिक कार्य कर सकता है तो उसके खिलाफ आवाज उठाना हर नारी का कर्तव्य है। फिर चाहे उसके लिए उसे अपना जीवन ही क्यों न कुर्बान न करना पड़े। इस कहानी का अंत भी कुछ ऐसा ही हुआ। मई महीने में मैं मसूरी गया हुआ था, वहाँ गोपा का तार आया कि मैं जल्दी से आ जॉऊ। जब में दिल्ली पहुँचा तो मुझे पता चला कि केदार किसी एक्ट्रेस के साथ भाग गया और जब तक सुन्नी ससुराल में है, वह वापस नहीं आएगा। मैं सुन्नी से मिलने गया तो पता चला कि उसने यमुना नदी में डूब कर अपनी जान दे दी। मैं उसकी अर्थी के साथ हो लिया और रात को दस बजे गोपा के घर पहुँचा पर वहाँ जाने से मुझे डर लग रहा था, क्योंकि मैं किस मुँह से यह बताता कि सुन्नी इस दुनिया में नहीं रही। जब मैं घर पहुँचा तो मुझे पता चला कि यह बात गोपा को पहले से ही पता थी पर वह शांत थी। मुझे यह शान्ति उसकी अपार व्यथा का एक रूप लग रही थी। 'दर्द जब हद से गुजर जाता है तो वह दवा बन जाता है।' यह प्रसिद्ध उक्ति इस कहानी के लिए उपयुक्त है। इस कहानी का अंत करुण है पर यहाँ पर पहली बार प्रेमचन्द नारी को अपने स्वाभिमान के लिए लड़ते हुए दिखाते हैं।

* राष्ट्रीय एकता पर आधारित कहानी : " विचित्र होली''

प्रेमचन्द का युग भारतीय जनता के राष्ट्रीय संघर्ष का युग था। 1857 स्वाधीनता-संग्राम ने निराशापूर्ण वातावरण को जन्म दिया था, लेकिन सन् 1885 में 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना होने पर भारतीयों में पुन: चेतना एवं जागृति का संचार हुआ। गोपाल कृष्ण गोखले तथा दादा भाई नौरोजी जैसे प्रसिद्ध नेता जो पहले अंग्रेजी शासन की प्रशंसा कर रहे थे, वे भी लार्ड क्लाइव और हेसिंटग्ज के बर्ताव

की वजह से ब्रिटिश साम्राज्यवादी राज्य को मूल सहित फेकने की बात की। इसी पर भारतेन्दु बाबू लिखते हैं कि --

" अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।।"

अंग्रेजों की आर्थिक शोषण नीति, शिक्षा पद्धति, शिक्षा का प्रचार-प्रसार, महँगाई तथा बेकारी ने केवल समाजिक जीवन को ही नहीं बल्कि राजनीतिक असंतोष को भी बढ़ा दिया। अंग्रेजों के शासन काल में पण्डे और ब्राह्मण धर्म के नाम पर लोगों को चूसते थे पर उसके साथ ही साथ सरकरी अफसर, प्यादे, पटवारी और सूदखोर महाजन भी उन्हें चूसते थे। अंग्रेज शासक उनका पिछलग्गू, चापलूस अधिकारी वर्ग और बड़े जमींदार लोगों की मेहनत पर आनंद लेते थे तथा आलस्य, विलासिता और व्यभिचार का जीवन व्यतीत करते थे और फिर हमारे देश का शिक्षित वर्ग इस नौकरशाही व्यवस्था का एक अंग बन गया था। मनुष्य अब अपना उल्लू सीधा करने तथा नौकरी में बढ़ोत्तरी पाने के लिए अपने बड़े सबकी खुशामत करता था। अंग्रेज अफसर भी अपने काम निकलवाने तथा अपनी सरकार चलाने के लिए अपनी मनमानी करने देते थे तथा ऊपरी तौर पर मान-सम्मान देते थे, लेकिन उनके दिल में भारतीयों के प्रति कभी भी कोई मान सम्मान और श्रद्धा नहीं थी।

विचित्र होली

प्रस्तुत कहानी का प्रथम प्रकाशन हिन्दी में मार्च 1921 को स्वदेश में हुआ था। बाद में इस कहानी को मानसरोवर-3 तथा प्रेमचन्द की सम्पूर्ण कहानियॉ-2 में भी संकलित किया गया। इसका प्रकाशन उर्दू में भी अज़ीब होली शीर्षक से खाके परवाना में किया गया है।

प्रस्तुत कहानी के सन्दर्भ में डॉ. बलवन्त साधू जादव कहते हैं कि--" विचित्र होली कहानी का जन्म प्रेमचंद के सरकारी नोकरों से मुक्त होने पर हुआ है। नौकरी से मुक्त होने के उपरान्त वे अपने काम में निष्ठापूर्वक लगे थे और असहयोग आन्दोलन के प्रचारक बने थे। जिसमें विदेशी चीजों का बहिष्कार पंचायतों की स्थापना और स्वदेशी का प्रचार जैसे मुद्दे आधारभूत माने गये थे। कहानी के पात्र लाला उजागरमल शहर के सहयोगी समाज के नेता है, पर अंत में कांग्रेस दफ्तर जाकर असहयोगियों में अपना नाम लिखा देते हैं। कहानी में लेखक की मुक्ति का आनन्द और मन का उबाल निकल पड़ा है।" 69

प्रस्तुत कहानी में यह दर्शाया गया है कि होली का पर्व है और मिस्टर ए. बी. क्रास जो एक अंग्रेजी अफसर हैं, वे शिकार खेलने गये हुए है। अंग्रेजों के घरों में शराब का होना मामूली बात होती है इसलिए मिस्टर क्रास के नौकर साईस, अर्दली, मेहतर, भिश्ती, ग्वाला, धोबी, तथा शेख नूरअली ने होली मनाना

शुरू किया। नूरअली ने सभी नौकरों को साहब की शराब पीने की दावत दी। यह दावत पाकर सारे नौकर साहब के कमरे में बैठकर शराब उड़ाने लगे। जिन लोगों को देशी शराब भी नामुमकिन होती थी आज वे विदेशी शराब पीकर स्वर्गीय आनंद प्राप्त कर रहे थे। सबको थोड़ी देर में शराब चढ़ने लगी, फिर क्या था, फाग के गीत शुरू हो गया, नाचना गाना शुरू हुआ, कुर्सियाँ उलटने लगी। दीवारों की तस्वीरें टूटने लगी, रिकाबियों को गेंद समझकर खेला जाने लगा, टेबल उल्ट गया। यह था मि. क्रास के घर का हाल। किसी को डर नहीं था। तभी राय उजागरमल जो युनियन क्लब के एकमात्र कर्ता थे जो अंग्रेजी शराब और अंग्रेजी रहन-सहन के कायल थे, इसीलिए मिस्टर क्रास उनके परम मित्र बने थे। उजागर मल के इसी तौर तरीके की वजह से उसे जिलाधीश तथा अन्य अफसर भी पसंद करते थे। वे अंग्रेजों की दावत में बेधड़क शामिल होते थे। जब वे मिस्टर क्रास के घर पहुँचे तो नूरअली से पता चला कि साहब ने होली खेलने की परवानगी दी है। यह सुनकर उजागरमल ने रंग मंगवाए और होली खेलना शुरू किया।

यहाँ तक कहानी में आम् होली के त्यौहार में जो वातावरण होता है, वही दिखाई देता है। वही भंग पीना, फाग गाना, और गुलाल खेलना आदि। लेकिन कहानी की यह होली वचित्र क्यों हैं यह हमें तब पता चलता है जब मिस्टर क्रास अपने घर आते हैं। इसके पूर्व ही उजागरमल ने नौकरो को ताकीद दी थी कि जब मिस्टर क्रास आए तो उनके मुख पर गुलाल लगा देना। जैसे ही मि. क्रास घर आकर अपनी गाड़ी से उतरते हैं और सभी नौकरों की आवाज बंगले में पाकर वे थोड़ा अंदर जाते हैं तो सभी ने उन पर रंग डाले और गुलाल लगाकर उनका मुख काला कर दिया। इस पर मिस्टर क्रास के गुस्से का ठिकाना न रहा। उन्होंने सारे नौकरों को हंटर से पीटा। अंत में उजागरमल जो कि उनके परम मित्र थे उनको भी न बख्शा और हंटर लेकर उनके पीछे भागे। अजागरमल खूब भागे और जग मिस्टर क्रास अपना काला मुख लेकर आगे न बढ़ सके तो वे लौटे। उजागरमल के कोचवान ने उन्हें उठाकर फिर से गाड़ी में बिठाया।

उजागरमल को अपनी गलती का एहसास हुआ, उनको अब मालूम पड़ा कि जिनको वे अब तक अपना समझते थे वह उनका कितना बड़ा भ्रम था। उजागरमल अपना अपमान रह-रहकर याद करके विह्वल हो रहे थे। उनको अपने पराए में फर्क पता चला, उनको यह भी एहसास हुआ कि अंग्रेज सिर्फ भारतीयों से प्यार का दिखावा करते हैं, पर अन्दर से वे हमेशा हमको निम्न मानते हैं। यहाँ प्रेमचंद ने उस वर्ग को समझाने की कोशिश की है जो यह समझते थे कि अंग्रेज उनको अपना परम मित्र मानते हैं। वे हमेशा भारतीयों का भला चाहते हैं, लेकिन ऐसा नहीं है। अंग्रेज ज़बसे भारत आए तबसे लेकर छोड़ने तक अपना

स्वार्थ ही सिद्ध करते रहे और जाते-जाते भारत को एक ऐसे मसले में उलझा दिया जो आज तक सुलझने का नाम नहीं ले रहा है। वह है हिन्दू-मुस्लिम का कोमवाद। अंग्रेजो ने अपनी स्वार्थपरता में न जाने कितने लोंगों को इसका भोग बनाया। जब उजागरमल को इस बात का एहसास हुआ तो वे तुरंत कांग्रेस की सभा में पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि सभा में सभी लोग हिन्दू-मुस्लिम, छोटे-बड़े, ऊँच-नीच आदि सभी इक्ट्ठा मिल-जुलकर होली खेल रहे थे, तथा फल और जलेबी खा रहे थे। सारा वातावरण एवं सभी लोग खुश एवं आनंदित थे। उजागरमल स्टेज पर जाकर सभी को संबोधित करते हुए कहते हैं कि--" आपसे द्रोह करने का दंड आज मुझे मिल गया। जिलाधीश ने आज मेरा घोर अपमान किया। मैं वहाँ से हंटरों की मार खाकर आपकी शरण में आया हूँ। मैं देश का द्रोही था, जाति का शत्रु था। मैंने अपने स्वार्थ के वश अपने अविश्वास के वश में देश का बड़ा अहित किया, खूब काँटे बोये। उनका स्मरण करके ऐसा जी चाहता है कि हृदय के टुकड़े- टुकड़े कर दूँ।'' 70

कहानी के अंत में उजागरमल पश्चाताप की आग में जल रहे थे और अपना प्रायश्चित पूर्ण करने के लिए वे तन, मन, धन सभी रूपों से कांग्रेस में शामिल हो जाते हैं यहाँ प्रेमचंद इस सच्चाई को साबित करते हैं कि 'अपने-अपने होते हैं और पराए-पराए' परायों पर भरोसा करके अपने घर में आग नही लगाई जाती है।

* धर्म एवं साम्प्रदायिकता का विरोध करती कहानियाँ

यहाँ साम्प्रदायिकता से मतलब हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायों से है। भारत में हिन्दू-मुस्लिम के बीच झगड़े पुराने समय से चले आ रहे हैं। मुस्लिम बड़े कट्टरवादी थे। वे जब से भारत में आए तब से उन्होंने अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए साम, दाम, दंड और भेद इन सबका प्रयोग किया। वे अपने धर्म के प्रचार प्रसार हेतु बुरे से बुरा कार्य तक करने के लिए तैयार थे। मुगलशासन काल में इस्लामों का नेतृत्व एवं वर्चस्व बढ़ने लगा और वे अपनी मनमानी करने लगे। मध्ययुगीन संतो एवं सूफियों ने इस भेद-भाव को दूर करने में काफी सहायता की। अगर यह परम्परा और रही होती तो यह हिन्दू - मुस्लिम का प्रश्न गौण होता, लेकिन ब्रिटिश-शासन का सबसे बड़ा दुष्परिणाम हिन्दू-मुस्लिम विरोध के रूप में सामने आया। अंग्रेजों ने हिन्दू और मुस्लिम को आपस में लड़ाकर अपने शासन की नींव को मजबूत कर दिया। उसके बाद यह मामला और उलझता गया। उसे सुलझाने के सारे उपाय व्यर्थ गये। अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाई। इसी नीति के एक भाग स्वरूप सन् 1902 में पृथक चुनाव का अधिकार भारतीयों को दिया गया। इसके तहत सरकारी नौकरियों जैसे पुलिस, फौज, स्कूल, कालेज आदि में हिन्दू-मुसलमानों की जनसंख्या के आधार पर सभी को भर्ती किया जाने लगा। जिसका परिणाम यह हुआ

कि आर्थिक स्वार्थों ने धार्मिक वैमनस्य का रूप ले लिया। इस सन् 1905 में सरकार के बंग-भंग ने हिन्दू मुस्लिम की रही सही एकता को भी तोड़ डाला और धार्मिक गुरुओ ने भोली-भाली जनता के द्वारा 'धर्म खतरे में' और 'संस्कृति खतरे में' का नारा चारों ओर फैला दिया। सन् 1920-22 में गांधीजी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के द्वारा हिन्दू मुस्लिम में एकता स्थापित हुई, पर यह बहुत देर टिक न सकी, क्योंकि 'चोरा-चौरी' की घटना के बाद गांधीजी ने यह आन्दोलन बन्द करवा दिया और फिर क्या था ! सारे मजहबी नेता उठ खड़े हुए और शुद्धि और तबलीग के आन्दोलन शुरू हो गये। धर्म को अफीम का नशा या 'पुडा-पुरोहितों की चाल' कहा जाने लगा। इसमें संदेह न रहा कि अज्ञान धर्म का रखा है और चालबाजी तथा धर्म में चोली दामन का साथ है। देश की एकता की छिन्न- भिन्न स्थिति को देखकर प्रेमचंदजी से न रहा गया और उन्होंने इसी एकता को वापस लाने का प्रयास करते मन्दिर और मस्जिद जैसी कहानियों की रचना की।

1. मन्दिर और मस्जिद

इस कहानी का प्रथम प्रकाशन उर्दू में 'दैरो हरम' नामक शीर्षक से 'आजाद' पत्रिका में हुआ। हिन्दी में अप्रैल 1925 को माधुरी में प्रकाशित हुई तथा बाद में गुप्तधन-2 और प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियॉं-3 में संकलित की गई।

इस कहानी में चौधरी इतरअली जो कड़े के जागीरदार थे, उनको यह जागीर उनके बुजुर्गों द्वारा शाही जमाने में अंग्रेजी सरकार की बड़ी खिदमत करने के बाद मिली हुई थी। उनके संबंधों की वजह से उन्होंने यह मिल्कियत और बढ़ा ली थी। अंग्रेज जब इस इलाके में दौरे पर आते तो चौधरी साहब को मिलने जरूर आते, कहानी का प्रारम्भ प्रेमचंद ने जिस तरह से किया है उससे ऐसा लगता है कि चौधरी इतरअली अंग्रेजों के बड़े खुशामदखोर है, पर यह बात सही नही है। चौधरी कभी सामने से हाकिम को जी हजूरी करने नही जाते, वे कानून, कचहरी के मामलों से भी दूर रहते है फिर चाहे उनका नुकसान ही क्यों न हो। वे रोज पांच बार नमाज अदा करते, तीसो रोजा रखते और नित्य कुरान की तलावत करते थे। फारसी और अरबी के आलिम थे, शरा के पाबंद थे तथा सूद को हराम समझते थे। लेकिन वे सच्चे मुसलमान थे। इस कहानी का जो दूसरा पहलू है उसमें हमें मुहम्मद जलालुद्दीन अकबर का स्मरण होता है। अकबर ने जिस तरह हिन्दू मुस्लिम दोनों धर्म को अपनाया था इसी तरह चौधरी ने भी धार्मिक संकीर्णता छोड़कर हिन्दू धर्म के तौर तरीके को भी अपनाया था , जैसे प्रातःकाल स्नान करना, रोज एक कोस चलकर गंगा स्नान के लिए जाना तथा वहॉं से चॉंदी के कलश में गंगा का पानी लाना, सातवें दिन अपना पूरा घर गाय के गोबर लिपवाना, एक पंडित बारहों मास उनके बगीचे में दुर्गापाठ भी करता था।

इसके अलावा साधु-सन्यासियों तथा मुसलमान फकीरों का आदर-सत्कार करना, नित्य सौ-सवा सौ आदमी को भोजन करवाना, आदि के बावजूद उनके ऊपर किसी का एक रूपये कर्ज नही था, बल्कि संपत्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई। इस पर उनकी रियासत में यह हुक्म था कि मुर्दे को जलाने के लिए, किसी यज्ञ के लिए, भोज के लिए, शादी-ब्याह के लिए, सरकारी जंगल से जितनी लकड़ियाँ चाहिए लोग काट सकते है। नैवेद्य के रूपये तथा लड़कियों के ब्याह के रूपये पहले से ही मुकर्रर थे। शादी में हाथी, घोड़े, तंबू, शामियाने, पालकी-नालकी, फर्श, जाजिम, पंखे, चंवर, चांदी के महफिल आदि सामान बिना दिक्कत के उनके पास मिल जाता था। चौधरी साहब की यह उदारता दानशीलता से हमें यह ज्ञात होता है कि वह एक सच्चे एवं धार्मिक मनुष्य थे, जो अपनी प्रजा के लिए ही जीते है।

चौधरी साहब की यह अच्छाई सबको रास न आती थी। मुसलमान लोग चौधरी से जलने लगे। इसी कारण उन पर कई हमले भी हुए, लेकिन चौधरी साहब के पास एक राजपूत चपरासी था, जिसका नाम भजनसिंह था, छः फिट का हट्टा - कट्टा था, जो सौ लोगों के लिए अकेला ही काफी था। उस गाँव के मुसलमानों ने कृष्ण जन्मोत्सव के दिन चौधरी में से हिन्दूपन निकालने का षडयन्त्र रचा। गाँव के बड़े ठाकुरद्वार पर रात को कृष्ण जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। काफी भक्तजन वहाँ ढोल मंजीरे के साथ गाना गाकर भगवान की भक्ति में लीन थे, तभी मुसलमानों ने उन पर हमला किया। लाठियों की बौछारें शुरू हो गई। मुसलमानों ने मंदिर में घुसकर लोगों को मारा। जब यह बात चौधरी को पता चला तो उसने भजनसिंह को वहाँ भेजा पर भजनसिंह जोश में किसी को मार न डाले, इसलिए चौधरी उसके पीछे-पीछे जाता है पर उसे जिस बात का डर था वही हुआ। भजनसिंह ने जोश में आकर अंधेरे में काफी लोगों को पीटा और जब चौधरी वहाँ गये तब एक आदमी वहाँ लहू-लुहान गिरा हुआ था, वह उनका इकलौता दामाद था जो उनकी संपत्ति का वारिस शाहिद हुसेन था। भजनसिंह के हाथ पैर फूल गये वह खुद को छूरा लेकर मार डालना चाहता था पर चौधरी ने उसे बचाना चाहा तथा उससे कहा कि--" इसमें तुम्हारा कोई कसूर नहीं । खुदा को जो मंजूर था वह हुआ। मैं अगर खुद को शैतान के बहकाने में आकर मंदिर में घुसता और देवता की तौहीन करता और तुम मुझे पहचानकर भी कत्ल कर देते, तो मैं अपना खुन माफ कर देता। किसी के दीन की तौहीन करने से बड़ा और कोई गुनाह नहीं है।" 71

यहाँ प्रेमचंद उस गहरी सच्चाई को पाठको के सामने प्रसस्तु करते हैं जिसे अगर हर एक इन्सान समझ जाए तो यह हिन्दू-मुस्लिम का झगड़ा ही खत्म हो जाए। प्रेमचंद कहते हैं कि मंदिर हो या मस्जिद दोनों जगहों पर देवताओं की आराधना की जाती है वहाँ जाकर खून खराबा करना देवताओं का अपमान

करना है। चौधरी भजनसिंह को न केवल उनके घरवाले बल्कि गाँववालों से एवं पुलिस से तथा फांसी के फन्दे से भी बचाते हैं। जो इन्सान कभी पुलिस स्टेशन नहीं गया था वह आज अदालत के धक्के खा-खाकर पैसों को पानी की तरह बहाकर भजनसिंह को बचाता है। भजनसिंह फॉसी के फन्दे से तो बच गया ,पर साम्प्रदायिकता से न बच सका। उसके छूटते ही हिन्दुओं ने उसका शुद्धि करवा दी। हिन्दुओं ने अपना एक संघ बनाया जिसका मुखिया भजनसिंह को बनाया गया। वहाँ मुसलमान भी अब संगठित हो गए। जो लोग कभी मंदिर-मस्जिद में नहीं जाते थे, वे लोग अब रोज सुबह शाम संध्या भक्ति एवं पांचों वक्त के नमाज पढ़ने लगे।

आज एक साल के बाद फिर वही जन्माष्टमी का दिन आया हिन्दुओं ने तैयारियाँ शुरू की। हिन्दुओं का एक बहुत बड़ा जुलूस शाम के समय नगाड़े अजान लगा और अजान के वकत ही वह मस्जिद के सामने पहुँचकर जोर-जोर से नगाड़े बजाने लगा। एक मुसलमान ने आकर नगाड़े को बंद करने को कहा, उसी समय दोनो में कहा सुनी हो गई। हिन्दुओं ने पहले से ही तैयारी कर रखी थी बस मुसलमानों का भिड़ना बाकी था, वो कसर भी पूरी हो गई। मस्जिद में खूब मारा मारी हुई। इस पर हिन्दू कहते हैं, हमने मुसलमानों को खूब पीटा, जिसमें भजनसिंह ने हमें देवताओं जैसा साथ दिया और मुसलमान कहते हैं कि भजनसिंह की वजह से वे बच गए वरना मर ही गए होते। इससे यह ज्ञात होता है कि भजनसिंह शौर्य पर ही हिन्दू दम लेते थे। लेकिन इस घटना से चौधर बहुत क्रोधित हुए। आज भजनसिंह ने वही गुनाह किया है जो उनके दामाद ने किया था और उसी के कत्ल के गुनाह में से चौधरी ने भजनसिंह को बचाया था। भजनसिंह जब चौधरी के घर जातें हैं तब उनका गुस्सा देखकर भजनसिंह को पता चलता है कि चौधरी अपने दीन के पक्के हैं। चौधरी भजनसिंह को तलवार लेकर मारना चाहते हें परंतु भजनसिंह के प्रति खुद के लगाव के कारण वे रुक जाते हें। भजनसिंह चाहते तो चौधरी को एक हाथ मार कर पछाड़ सकता था। क्योंकि चौधरी एक दुबला-पतला और नाटा इन्सान था। पर उसे भी अपने मालिक के प्रति श्रद्धा थी इसलिए पश्चाताप वश भजनसिंह खुद चौधरी को कहता है कि वह कल सुबह उसका सर उसके घर मंगवा ले। यह भजनसिंह की स्वामिभक्ति थी।

इस पूरी कहानी में प्रेमचंद ने न केवल हिन्दुओं का पक्ष लिया है न मुसलमानों का। वे सिर्फ यही चाहते हें कि हर इन्सान अगर अपने ईमान का पक्का हो जाए तो कभी आपस में धार्मिक झगड़े हो ही नही सकते। इस कहानी में जिस तरह से साम्प्रदायिकता की चर्चा की गई है, इसकी वजह से नागपुर के एक मुस्लिम अखबार ने बड़ा बवाल मचाया था। इस घटना का उल्लेख 'हंसराज गहबर' की पुस्तक प्रेमचंद जीवन और कृतित्व के धर्म और साम्प्रदायिकता' नामक अध्याय में मिलता है।

2. हिंसा परमो धर्म (दीनदारी)

जिसका प्रथम प्रकाशन हिन्दी में दिसम्बर 1926 में माधुरी में हुआ था। बाद में मानसरोवर-5 और प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियॉं-3 में भी इस कहानी का संकलन किया गया। उर्दू में यह प्रेमचालीसी में भी संकलित है।

प्रस्तुत कहानी हिन्दू मुस्लिम एकता पर आधारित कहानी हैं इस कहानी में जामिद जो एक निम्नवर्ग का मनुष्य है और इस दुनिया में उसका कोई नहीं है। वह हर एक से अंच्छे से बोलता है, सबका मुफ्त में काम करता है। लोगों के लिए वह एक बेदाम का नौकर था। चाहे किसी बीमार की सेवा करनी हो, किसी हकीम के घर जाना हो तथा किसी जड़ी बूटी की तलाश करने के लिए मंजिलों की खाक छाननी हो तो लोग जामिद को भेज देते थे। अगर किसी गरीब पर अत्याचार हो रहा और जामिद उसे न बचाए यह हो ही नही सकता तो भले ही उसे अपनी जान गॅवानी पड़े। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि जामिद को दूसरे की मदद करने में आनन्द आता था। पर दुख इस बात का था कि कोई उसके उपकार का बदला न चुकाता था, न उसे रोटी मिलती थी न खाना। वह दर-दर भीख मॉंगता फिरता था। आखिर लोगों ने जामिद को समझाया कि अभी तो लोगों के पास है तो लोग खैरात समझकर दे देते हैं पर जब उनके पास कुछ न होगा तो वे पूछेंगे नहीं। लोग जामिद को धिक्कारते है क्योंकि वह अपना जीवन नष्ट कर रहा था, तभी एक दिन जामिर की ऑंखे खुलती है और वह एक दिन शहर के लिए निकल पड़ता है।

जब जामिद शहर में पहुॅंचता है तो वह शहर का माहौल देखकर काफी खुश होता है क्योंकि वह जहॉं से गुजरता है वहॉं रास्ते में बड़े-बड़े मन्दिर और मस्जिद दिखाई पड़ते है। गॉंव में हिन्दू एक वृक्ष के नीचे पानी चढ़ाकर भगवान का नाम लेते हैं, और मुसलमान एक चबूतर पर बैठकर नमाज पढ़ते हैं। जामिद को लगा कि यहॉं लोग बड़े धर्मभीरू एवं ईमान के पक्के हैं। उनमें दया, सहानुभूति कूट-कूटकर भरी है शाम के समय घूमते-घूमते जामिद एक विशाल मंदिर के पास गया। वहॉं ऑंगन में कचरा देखकर उससे न रहा गया तो उसने झाड़ू न मिलने पर अपने दामन से कचरे को साफ किया। वहॉं आने वाले कई लोगों को कई भ्रम हुए जैसे पागल है, मुसलमानों का भेदी है, गरीब है, तो किसी ने गोबर चोर आदि कल्पनाएं की। लेकिन जब लोगों को पता चला कि वह देहाती भक्त है, तो उन्होंने उसे फसा लिया। अच्छे कपड़े, खाना-पीना, मान-सम्मान आदि पाकर जामिद खुश हो गया। वह पहले से ही अच्छा भजन गा लेता था इस गुण के कारण मंदिर में उसने चार चॉंद लगा दिए। लोग दूर -दूर से उसका भजन

सुनने आने लगे। अखबारों में ये खबर छप गई कि एक बड़े मौलवी का शुद्धिकरण हुआ है। जामिद हिन्दुओं की इस चाल से बेखबर था।

प्रेमचंद यहाँ यह बताना चाहते हैं कि यह उस समय की बात है जब हिन्दू-मुसलमानों में बाह्य आडंबर बढ़ गया था। लोगों को शुद्धि से हिन्दू बनाना, हिन्दू धार्मिक नेताओं का एक मिशन बन गया था। जिसमें मुसलमान भी पीछे नहीं थे। एक बार जामिद कई भक्तों के साथ मंदिर में बैठा था, तब एक जनेऊ धारी युवक एक दुर्बल बूढ़े गरीब को पीट रहा था। जामिद से न रहा गया तो उसने वहाँ जाकर उस युवक से पूँछा कि उस वृद्ध को क्यों मार रहे हो ? इस पर पता चला कि उस युवक की मुर्गी ने उस युवक का सारा घर गन्दा कर दिया है। वृद्ध ने माफी भी माँगी पर युवक न माना और मारने लगा। इस पर जामिद और उस युवक के बीच मारामारी हो गई। जामिद के मारने की ही देर थी कि मंदिर के बाकी लोग आकर जामिद पर हाथ साफ करने लगे। जामिद समझ नहीं पाया कि वे लोग उसे क्यों मार रहे हैं। जब अधमरा हो गया तब उसने बेहोशी हालत में जो सुना वह इस प्रकार है--" धूत तेरी जात की। कभी म्लेच्छों से भलाई की आशा न रखनी चाहिए। कौआ कौओं ही के साथ मिलेगा। कमीना जब करेगा, कमीनापन। इसे कोई पूछता न था, मंदिर में झाड़ू लगा रहा था। देह पर कपड़े का तार भी न था, हमने इसका सम्मान किया, पशु से आदमी बना दिया, फिर भी अपना न हुआ ! " इनके धर्म का तो मूल ही यही है ! '' 72

यहाँ पर प्रेमचंद ने साफ तौर पर यह बताना चाहा है कि उस समय हिन्दू 'मुसलमानों में होड़ लगी हुई थी कौन कितनी शुद्धि करवाकर लोगों को हिन्दू या मुस्लिम बनाता है। वैसे भी अंग्रेजों ने हमारे देश की इस व्यवस्था में अपने हाथ रख दिए थे। अपने उसूल "Divide and Rule '' के आधार पर लोगों को भड़का कर भारत पर राज कर रहे थे। अंग्रेजों की इस नीति में हिन्दू और मुस्लिम दोनो बड़ी बुरी तरह से फंसे हुए थे। रातभर बड़ी बुरी तरह से कराहने के पर भी कोई उसकी हाल पूँछने न आया। सुबह जब वह थोड़ी दूर ही गया था कि वही वृद्ध जो कल पीट रहा था वह उसे बुलाने आया और अपने साथ 'काजी जोरावर हुसेन' जो एक मुसलमान नेता थे उनके पास ले गया। काजी ने जामिद को गले लगाते हुए कहा कि--" वल्लाह ! तुम्हें आँखे ढूँढ़ रही थी। तुमने अकेले इतने काफिरों के दाँत खट्टे कर दिए। क्यों न हो, मेमिन का खून है ! काफिरा की हकीकत क्या ! सुना सबके सब तुम्हारी शुद्धि करने जा रहे थे ; मगर तुमने उनके सारे मनसूबे पलट दिए। इस्लाम का नाम रोशन है। गलती यही हुई कि तुमने एक महीने भर तक सब्र नहीं किया। शादी हो जाने देते तब सारा मजा आता। एक नाजनीन साथ लाते और दौलत मुफ्त। वल्लाह ! तुमने उजलत कर दी।'' 73

यहाँ पर प्रेमचंदजी ने साफ तौर पर उस समय के मुसलमानों की सोच और इरादों को दशार्या है। प्रेमचंद ने इस कहानी में किसी भी धर्म का पक्ष नहीं लिया है, लेकिन उस समय के समाज का आइना दिखाया है। पूरा दिन मुस्लिम भक्तों का ताता जामिद को देखने के लिए जमा रहा। जब रात के समय में जामिद काजी के पास से धर्मग्रंथ का सबक लेकर बगल के कमरे में गया तब उसने देखा कि एक तांगेवाला एक हिन्दू औरत को वहाँ लेकर आया है। तांगेवाला उसे उसके पति का घर बताकर लाया था, पर औरत झिझक रही थी। उसे यह मकान उसके पति का नहीं लगता था, लेकिन तांगेवाले ने उसे यकीन दिलाकर उसे काजी के पास ले गया। काजी ने तांगे-वाले को पहले ही छत के ऊपर से देख लिया था। वह कमरे में उस औरत का इंतजार कर रहा था। औरत ने जब काजी को देखा तो वह झिझकी और पीछे मुड़ी पर तब तक देर हो चुकी थी। तांगे वाले ने उसे अन्दर धकेल दिया और काजी ने किवाड़ बंद कर दिए। काजी उसकी शादी जबरदस्ती जामिद से करवाना चाहता था पर उस औरत ने धर्म एवं आबरू छोड़ने से अच्छा अपनी जान देना समझा। औरत बार बार काजी के गिरफ्त में से निकलना चाहती थी पर वह न निकल पाती थी उसी समय जामिद दरवाजा खोलकर अन्दर घुसा और औरत को काजी से छुड़ाकर उसके पति पंडित राजकुमार के पास ले गया। यह पंडित वही था जिसने मंदिर के सामने उस वृद्ध एवं जामिद को पीटा था। जामिद ने पंडित की पत्नी इंदिरा को पंडित के पास छोड़ दिया। इंदिरा ने घर जाकर सारी बात बताई। इस पर पंडित बाहर आया और उसने जामिद को धन्यवाद दिया और कहा कि वह इस नेकी का बदला कैसे चुकाए। तब जामिद ने सिर्फ इतना कहा कि वह इसका बदला किसी मुसलमान से न ले। जामिद को शहर की हवा रास न आई क्योंकि यहाँ के लोग धार्मिक न होकर साम्प्रदायिक थे, इसलिए वह जल्द से जल्द गाँव के लिए निकल पड़ा।

यहाँ पर प्रेमचंदजी ने साफ तौर यह बताया है कि हिन्दू और मुस्लिम के साम्प्रदायिक झगड़े देश की प्रगति तथा समाज की व्यवस्था दोनों को बिगाड़ रहे हैं। आज दोनों धर्म के लोग एक दूसरे से श्रेष्ठ बताने के चक्कर में समाज का कितना नुकसान करते हैं यह बताने की जरूरत नहीं हैं। मुसलमानों का मानना है कि उर्दू उनकी 'मिल्ली भाषा' है पर आज मद्रासी मुसलमानों से पूँछो तो वे उर्दू से अपरिचित है, वैसे ही हिन्दू संस्कृति से भी देखने को मिलता है। वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन आदि दोनों सम्प्रदायों के विभिन्न प्रान्तों में अलग दिखाई देते हैं। यह सब केवल हमारे दिमाग की उपज है। प्रेमचंद यह बताना चाहते हैं कि " मैं दुनिया में महात्मा गांधी को सबसे बड़ा मानता हूँ। उनका उद्देश्य यही है कि मजबूर और काश्तकार सुखी हो। वह हम लोगों को बढ़ाने के लिए आन्दोलन मचा रहे है। मैं लिख

करके उनको उत्साह दे रहा हूँ। महात्मा गांधी हिन्दू-मुसलमानों की एकता चाहते हैं। मैं भी हिन्दू और उर्दू मिलाकरके हिन्दुस्तानी बनाना चाहता हूँ।'' 74

* नशाबन्धी सम्बन्धी कहानियाँ

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के माध्यम से समय-समय पर कुरीति-रिवाजों पर कुठाराघात किया है लेकिन साथ ही साथ उन्होंने देश की आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति को समझाते हुए अंग्रेजों के चक्रव्यूह से भारतीय जनता को मुक्त कराने के लिए भी अपने साहित्य के माध्यम से कई प्रयत्न किये है। जैसे स्वदेशी वस्त्रों को ग्रहण करना, राष्ट्रीय एकता, हिन्दू-मुस्लिम एकता आदि। उसी तरह उन्होंने नशाबन्धी को भी अपना एक विषय बनाया है। प्रेमचंद के समय में अंग्रजों ने भारतीयों का आर्थिक शोषण करने के लिए जगह-जगह पर ताड़ी एवं शराब की दुकाने खोल रखी थी। वैसे भी उस समय भारतीय प्रजा की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी न थी। ऊपर से वे अपनी तन्ख्वाह का काफी भाग शराब में बरबाद कर देते थे। वे शराब को न पीकर शराब उन्हें पीती थी। शराब पीने से व्यक्ति न केवल आर्थिक रूप से कमजोर होता है बल्कि साथ में शारीरिक एवं मानसिक रूप से भी कमजोर हो जाता है। कितनी बार ऐसा देखा गया है कि शराब व्यक्ति की मृत्यु का कारण तक बन जाती है। इसके अलावा उसके परिवार को जो अभाव झेलना पड़ता है वह अलग। घर की आर्थिक परिस्थिति खराब होने के कारण स्त्रियाँ परिवार के भरण पोषण हेतु घर की दहलीज पार करके कई बार गलत कदम भी उठा लेती है। कई बार शराब न मिलने पर आदमी गलत कदम उठा लेता है जिसका परिणाम काफी खराब होता है। कितने लोग शराब के कारण बरबाद होते देखे गये हैं और कितने एक्सीडेंट में मरते पाए जाते है। आज तो स्थिति ऐसी है कि शराब का नशा न केवल पुरुषों पर है बल्कि स्त्रियों में भी देखने को मिल रहा है और आज यह रईस खानदानों की औरतों की शान बन चुका है, जो पाश्चात्य संस्कृति को साफ तौर पर दर्शाती है।

प्रेमचंद के समय में अंग्रेजों की हर मनसा पूरी हो रही थी, भारतीय आर्थिक एवं शारीरिक रूप से कमजोर हो रहे थे। जो उस समय की परिस्थिति के अनुकूल न था। उसी दौरान गांधी जी ने अंग्रेजो को एक पत्र लिखा कि " मैंने रोटी माँगी थी मुझे पत्थर मिला। इंतजार की घड़िया समाप्त हुई।'' 12 मार्च 1930 को ऐतिहासिक नमक सत्याग्रह की शुरुआत करते हुए गांधीजी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। इसके तहत उन्होंने नमक कानून, ब्रिटिश कानून, कानूनी अदालतों, सरकारी अदालतों, सरकारी विद्यालयों, महाविद्यालयों, सरकारी समारोहों, विदेशी वस्तुएं एवं कपड़े, सरकारी नौकरयाँ, शराब की दुकान एवं ताड़ी आदि का बहिष्कार किया। गांधीजी के इस आन्दोलन का प्रभाव पूरे देश पर तो पड़ा ही साथ

ही साथ प्रेमचंद का साहित्य भी इससे अछूता न रहा। उन्होंने नशे एवं शराब से संबंधित कुछ कहानियॉ लिखी हैं जो इस प्रकार हैं

1. शराब की दुकान

इस कहानी का प्रथम प्रकाशन केवल हिन्दी में इसी नाम से 1930 को 'हंस' में हुआ था तथा मानसरोवर-7 और प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियॉ-4 में भी इसका संकलन हुआ है।

प्रस्तुत कहानी में प्रेमचंद ने उस समय के स्वयंसेवको द्वारा 'शराब की दुकानो का पिकेटिंग किस तरह होता है, वे कैसी कैसी यातनाएं सहते हैं उसका दिल दहलाले वाला चित्रण प्रस्तुत किया गया है। जब जगह-जगह शराब और ताड़ी की दुकाने खुल गई थी और भारतीय प्रजा नशे में अपने एवं अपने परिवार की जिन्दगी बरबाद कर रही थी, तब गांधीजी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान अपने भाषण में आदेश दिया कि कांग्रेस के स्वयंसेवक एवं खास रूप से औरतें शराब की दुकान पर धरना दे और लोगों को न केवल नशा करने से रोके लेकिन उनको सही राह दिखाए। गांधीजी के इस भाषण ने पूरे देश की कांग्रेस कमेटियों को कार्यरत बना दिया। जगह-जगह पर कांग्रेस कमेटियों की बैठक होने लगी। इस कहानी की शुरुआत भी कांग्रेस कमेटी की बैठक से हुई है। न केवल कांग्रेस कमेटी में बल्कि पूरे देश में यह सवाल उठ रहा था कि 'शराब और ताड़ी की दुकानों पर कौन धरना देने जाए।' इसका कारण यह था कि कांग्रेस स्वयंसेवकों को पुलिस से डर न था क्योंकि पुलिस के लोग अपनी जिम्मेदारियॉ समझते थे और देश पर जान देने वाले लोगों से दुर्व्यहार न करते थे लेकिन उन्हें डर था उन पियक्कड़ों से जो मार-पीट के अलावा कोई बात न करते। कांग्रेस के लोगों ने अहिंसा का रास्ता अपनाया था इसलिए अगर वे लोग हाथापाई पर आ जाए तो कांग्रेस के लोग कुछ न कर पाए। इसी वजह से कोई कांग्रेस सदस्य जान बूझकर मौत के मुंह में जाना नहीं चाहता था। पिकेटिंग सें बचने के लिए वे कई रास्ते जरूर बताते थे, जैसे इन जातों में पंचायतों को फिर संभालना चाहिए। उनके घर जाकर उन्हें समझाया जाए तो अच्छा असर पड़ेगा आदि। लेकिन कोई धरना देने जाना नहीं चाहता था।

कमेटी में उसी समय पिछली कतार में बैठी हुई एक औरत जिसका नाम मिसेज सक्सेना था, जिनके पति जी.पी. सक्सेना कांग्रेस के अच्छे कार्यकर्ता थे और तीन साल पहले ही उनका देहान्त हो गया था। मिसेज सक्सेना अब शरीफों के घर में खद्दर के कपड़ों का प्रचार करती और अपने भाषणों से लोगों में जोश पैदा करती थी। कमेटी के दौरान मिसेज सक्सेना ने प्रधान से इस बात की इजाजत मॉगी कि वे शराब की दुकान पर धरना देने जाए। लेकिन प्रधान उन्हें वहॉ भेजना नही चाहता था क्योंकि पियक्कड़ बड़े मुंहफट एवं दुर्व्यवहारी होते हैं। विनय उनमें नहीं होता है इस पर मिसेज सक्सेना व्यंग्य भाव से

कहती हैं कि "तो क्या आपका विचार है कि कोई ऐसा जमाना भी आयेगा, जब शराबी लोग विनय और शील के पुतले बन जायेंगे ? यह दशा तो हमेशा ही रहेगी। आखिर महात्माजी ने कुछ समझकर ही तो औरतों को यह काम सौंपा है।'' 75

यहाँ पर प्रेमचंद ने सत्यता की उस गहराई को प्रस्तुत किया है जिसे कोई झुठला नही सकता चाहे समय जो भी हो। अगर वर्तमान की बात करें तो आज का जमाना और भी खराब हो गया है। लोग पहले शराब पीने के लिए झूठ बोलते थे या चोरी से पीते थे लेकिन आजकल तो खुलेआम पीते हैं और केवल पीते ही नही बल्कि शराब के लिए बीबी बच्चों को भी बेच देते हैं। अमीरजादे और कितने नामचीन लोग शराब की हालत में ड्राइविंग करते समय न जाने कितने लोगों की जान तक ले लेते है। इस प्रकार की घटनाएं किसी से छुपी नही हें, लेकिन यह भी है कि पैसों की ताकत के कारण वे कानून से साफ-साफ बच जाते हैं।

प्रधान मिसेज सक्सेना को यह काम नहीं सौंपना चाहते थे पर वह अपनी बात पर अड़ी रही। उसी दौरान एक नौजवान मेम्बर 'जयराज' जो कानूनी पढ़ाई पढ़ता था , शादी हो गई थी और दो-तीन बच्चे भी थे पर घर की आर्थिक हालत खराब थी लेकिन देश के लिए काफी जोश, तड़प, और दर्द था। उसने यह काम उसे सौंपने का निवेदन किया। मिसेज सक्सेना जानती थी कि वह त्याग और साहस का पुतला है, पर उसमें धैर्य और बर्दाश्त करने की शक्ति नहीं है। इसलिए वह यह काम खुद करना चाहती है। जयराम और मिसेज सक्सेना में काफी बातें हुई पर आखिर में प्रधान ने पिकेटिंग का काम जयराम को सौंपा। दूसरे दिन तीसरे पहर के आसपास पांच स्वयंसेवकों को लेकर वह बेगमगंज के शराबखाने की पिकेटिंग करने जा पहुँचा। वहाँ दो तीन शराबियों के बीच सरकार और जीवन-मृत्यु के ऊपर टिप्पणियाँ प्रस्तुत हो रही थ कि उसी समय "जयराम ने झंडे को जमीन पर खड़ा करके कहा- भाइयों, महात्मा गांधी का हुक्म है कि आप यहाँ जो पैसे उड़ा रहे हैं, वह अगर अपने बाल बच्चें को खिलाने पिलाने में खर्च करें तो कितनी अच्छी बात हो। जरा देर के नशे के लिए आप अपने बाल-बच्चों को भूखों मारतें हैं। गंदे घरों में रहते हैं, महाजन की गालियाँ खाते हैं। सोचिए, इस रूपये से आप अपने प्यारे बच्चों को कितने आराम से रख सकते हैं।'' 76

यहाँ प्रेमचंद उस मर्म को उजागर करना चाहा है जिसे आज तक लोग समझकर भी न समझ रहे थे। लोग जानते हैं कि शराब बुरी चीज है लोंगों को तबाह कर देती है पर फिर भी वे शराब को नहीं छोड़ते हैं और अपने दिल को बहलाने के लिए कई तर्क लड़ाते हैं जैसे 'शराब बुरी होती तो अंग्रेज क्यों पीते?' ऐसे सवाल पूँछकर वे अपना पक्ष जरूर लेते हैं, लेकिन जयराम ने अपनी काबिलियत का पूरा

उपयोग करते हुए उन सबको समझाते हुए कहा कि "अंग्रेजों के बाप-दादा अभी डेढ़ दो सौ साल पहले लुटेरे थे। हमारे-तुम्हारे बाप-दादा ऋषि-मुनि थे। लुटेरों की संतान पिये तो पीने दो। उनके पास न कोई धर्म है न नीति ; लेकिन ऋषियों की संतान उनकी नकल क्यों करे। हम और तुम उन महात्माओं की संतान हैं, जिन्होंने दुनिया को सिखाया, जिन्होंने दुनिया को आदमी बनाया। हम अपना धर्म छोड़ बैठे, उसी का फल है कि आज हम गुलाम है। लेकिन अब हमने गुलामी की जंजीरों को तोड़ने का फैसला कर लिया है।"77 इसी सन्दर्भ में डॉ. बलवन्त साधू जाधव भी कहते हैं कि "शराब की दुकान एक अनूठी कहानी है। प्रेमचंद आजादी के प्यासे थे। इसके लिए उन्होंने महात्मा गांधी का अहिंसा और असहयोग का रास्ता अपनाया था। आजादी हासिल करने का उनका क्रान्तिकारी संकल्प वकील जयराम के मुख से घोषित हुआ है।" 78

प्रेमचंद यहॉ दर्शाते हैं कि आम इन्सान को समझने के लिए स्वयंसेवक गांधीजी के आदेश के अनुसार सामान्य एवं आदर्श पूर्ण भाषा का प्रयोग करते थे और अपनेपन के भाव से न केवल उन्हें प्रभावित करते थे, पर साथ ही साथ आजादी की लड़ाई के लिए उन्हें प्रेरित भी करते थे। 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' के दौरान गॉधीजी और अंग्रेजों के बीच यह समझौता हुआ था कि स्वयंसेवक शराब और ताड़ी की दुकान पर धरना दे उस समय पुलिस तब तक कुछ कार्यवाही नहीं करेगी जब तक वहॉ कोई हिंसक घटना नही होती है। इसी समझौते के तहत प्रेमचंद ने इस कहानी में दर्शाया है कि शराब की दुकान के ठेकेदार के बुलाने पर पुलिस वहॉ आई जरूर पर सिवाय जयराम को समझाने के अलावा वह कुछ न कर सकी, लेकिन दुकानदार को यह सलाह जरूर दिया कि उसे गुण्डें से पिटवा दे और एक बोतल शराब घर भिजवा दे, जिसमें वह कोई कार्यवाही नही करेगा। इसी पर चौधरी अपने साथी से कहता है कि "सरकार चाहती है कि हम लोग खूब शराब पीयें और कोई हमें समझाने न पाये। शराब का पैसा भी तो सरकार में ही जाता है।" 79 यह उस समय के हमारे भारत की सच्चाई है। अंग्रेज सिर्फ स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने जगह-जगह शराब की दुकानें चलाने की परवानगी दी थी ताकि भारतीय आर्थिक रूप से कमजोर हो जाएं और मानसिक शक्ति भी नष्ट हो जाय। जयराम की बातों से प्रभावित होकर कुछ लोगों ने शराब की बोतल जमीन पर पटक दी और महात्माजी के जय का नारा लगाने लगे। जयराम ने न केवल चौधरी कल्लू जैसे पियक्कड़ों से शराब की बोतल तुड़वाई बल्कि एक अंग्रेजी खानसाबे ने भी काफी बहस के बाद बोतल तोड़ दी। इस पर काफी लोग दुकान के सामने इक्ट्ठा हो गये। दुकान में चार पियक्कड़ अब तक शराब पी रहे थे। जयराम ने उन्हें रोकना चाहा, पर वे हाथापाई पर उतर आए। इस हाथापाई में जयराम को उन पियक्कड़ दर्शकों की खुब मार पड़ी। डंडो के वार ने उसे रात भर बेहोश

रखा। जयराम कमजोर न था। वह चाहता तो उन्हें मारकर अपने आप को बचा लेता लेकिन यह कांग्रेस की नीति न थी। दूसरे दिन मिसेज सक्सेना उनसे मिलने तथा बताने गई कि कांग्रेस कमेटी ने उन्हें पिकेटिंग करने की आज्ञा दी है। इसलिए वे आज से धरना देने जाने वाली हे। जयराम के मना करने पर भी वह जयराम को पुरुषों की भाँति यश लूटने के बजाय उन्हें एक मौका देने को कहती है और वहॉ से चली जाती है। जयराम तीसरे पहर खराब हालत में भी शराब की दुकान पर जाने के लिए निकलता है। तभी उसकी पत्नी उस पर स्त्रीसहज भाव से व्यंग्य करती है कि वह मिसेज सक्सेना के कारण से जा रहे हैं। इस पर जयराम अपनी पत्नी को समझाते हुए कहता है कि "शहर में तीन लाख से कुछ ही कम आदमी हैं, कमेटी में भी तीस मेम्बर हैं, मगर सब के सब जी चुरा रहे हैं। लोगों को अच्छा बहाना मिल गया है कि शराबखानो पर धरपा देने के लिए स्त्रियों ही की जरूरत है? आखिर क्यों सित्रयों को ही इस काम के लिए उपयुकत समझा जाता है? इसलिए कि मरदों ही के सिर पर भूत सवार हो जाता हे और जहॉ नम्रता से काम लेना चाहिए, वहॉ लोग उग्रता से काम लेने लगते हैं।'' 79 गांधीजी ने स्त्रियों के गुणों की वजह से यह आदेश दिया कि स्त्रियॉ शराब की दुकानों की पिकेटिंग करे। प्रेमचंद ने जयराम के माध्यम से गांधीजी के उद्देश्य को स्पष्ट किया है। जयराम शराब की दुकान की कुछ दूर एक लेमनेड वर्क की दुकान पर बैठा था कि एक स्वयंसेवक ने बताया कि सारे शोहदें मिसेज सकसेना से दिल्लगी कर रहे हैं। जयराम लाठी लेकर गुस्से में वहॉ गया पर मिसेज सकसेना ने उन्हें वहॉ से वापस भेज दिया। जयराम वापस ही गया था कि तभी एक स्वयंसेवक ने बताया कि काला आदमी दूसरी बोतल लेने गया तो मिसेज सकसेना ने रोकना चाहा लेकिन उसने देवीजी को धक्का दिया जिस पर वे गिर पड़ी और घुटनों में बड़ी चोट आई। बस क्या था जयराम फिर से आग बबूला होकर वहॉ गया और शराबी की गर्दन पकड़ ली, लेकिन मिसेज सक्सेना ने उन्हें कांग्रेसी न ठहराते हुए अपना सा मुँह लेकर वापस भेज दिया। जयराम अब घर की तरफ निकला ही था कि आधे रास्ते पर एक स्वयंसेवक ने आकर बताया कि वह काला आदमी बोतल घर ले जा रहा था, तब मिसेज सक्सेना दरवाजे पर बैठ गई। वह आदमी मिसेज सक्सेना को बार-बार हटा रहा था उसमें मिसेज सक्सेना के कुछ कपड़े फट गये और कुछ चोटें भी आई। जयराम शराब खाने की तरफ दौड़ा। उसने देखा कि एक तरफ मिसेज सक्सेना अपना सर पकडे बैठी थी और उनका आंचल खून से लथपथ था तो दूसरी तरफ चार स्वयंसेवक दुकान के सामने लेटे हुए थे। जयराम को क्रोध आया और वह क्रोधानुवश सबको डंडे से पीटने लगा। उसी दौरान जयराम के हाथों कब मिसेज सकसेना के लाठी लग गई, पता न चला। जब वे जमीन पर गिर पड़ी तब जयराम को होश आया। वह थोड़ी देर स्तब्ध रह गया और खुद भी मुर्छित हो गया। उसी वक्त काले मोटे शराबी

ने शराब की बोतल जमीन पर पटक दी और जयराम के सर पर पानी डालने लगा। उसी में से एक शराबी ने लैंससदार से कहा; तुम्हारा रोजगार अन्य लोंगों की जान ले कर रहेगा। अब तो अभी दूसरा ही दिन है।''81

यहॉं उस समय की स्थिति का वर्णन है जब स्वयंसेवक लोगों की मार-पीट, तथा गाली-गलौच सहकर भी पिकेटिंग करते थे। वह भी नम्रता से। इस पिकेटिंग के दौरान कितने ही स्वयंसेवक शहीद हो गये पर उन्होंने अपना कार्य न छोड़ा। जिसका परिणाम यह आया कि शराब की दुकानें खुद दुकानदार बंद करके स्वदेशी कपड़ों की दुकानें शुरू करने लगे। कहानी के अंत में प्रेमचंद ने यही दिखाने का प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत कहानी के प्रारम्भ से लेकर अंत तक प्रेमचंद ने अपने समय में हो रहे नशाबंदी के आन्दोलन का हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। इस पूरी कहानी में प्रेमचंद ने उस समय के स्वयंसेवकों की कार्यकारिणी एवं नशेबन्धी के समय भोगी गयी यातनाओं का चित्रण किया है। जिससे हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

2. मैकू

इस कहानी का प्रथम प्रकाशन हिन्दी में जून 1930 को हंस में हुआ, तथा बाद में मानसरोवर-7 और प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियॉं-4 में इसका संकलन किया गया।

प्रस्तुत कहानी भी नशाबंधी पर आधारित कहानी है। इस कहानी में भी प्रेमचंद ने एक स्वयंसेवक की सहनशीलता एवं उसके नायक मैकू पर हो रहे अत्याचार को बखूबी दर्शाने का प्रयत्न किया है। मैकू और कादिर दोनों मित्र हैं, जो ताड़ीखाने में ताड़ी पीने जा रहे थे। शाम का वकत था, जिन्हें गलियों में से गुजरना भी पसंद न था उस गली में सौ लोगों की भीड़ और पुलिस को देखकर वे दोनों डरते हैं लेकिन कादिर उसे हौसला देते हुए बताता है कि पुलिस तो ठेकेदार के आदमी हैं वे कुछ नहीं कहेंगे। भीड़ तो तमाशा देखने आई है डंडे खाने नहीं। कादिर की बात सुनकर मैकू निडर होकर मुफ्त की ताड़ी पीने की मुराद लेकर चलने लगा। आगे एक स्वयंसेवक ने हाथ जोड़कर मैकू को शराब न पीने के लिए मजहब का वास्ता दिया पर मैकू ने जबाब में एक करारा जोरदार तमाचा लगा दिया। स्वयंसेवक गिर पड़ा और उसकी ऑंखों में खून उतर आया। दूसरे स्वयंसेवक ने उसको संभाला। मैकू ने देखा कि उसकी पॉंचों उंगलियॉं उसके गालों पर छप गई है। मगर वालंटियर तमाचा खाकर भी वहॉं से हटा नहीं। मैकू ने जब मारने की धमकी दी तो स्यवंसेवक ने अपना सर सामने किया, लेकिन अन्दर न जाने की विनती की। मैकू ने आज से पहले कितने सर पर लाठी टूटते देखा था पर उसे ग्लानि न हुई, लेकिन आज उसे अपनी उंगलियों के निशान पंचशूल की तरह चुभ रहे थे और ग्लानि महसूस हो रही थी। कादिर ने मैकू से फिर एक मारने की सलाह दी पर मैकू ने बड़ी दृढ़ता से कहा कि वह अन्दर जाकर नहीं पीएगा। तब

स्वयंसेवक उठ गया। यह देखकर एक़ चौकीदार ने स्वयंसेवक पर व्यंग्य करते हुए कहा कि "लात के आगे भूत भागता है, एक ही तमाचे में ठीक हो गया!"82

यहॉं पर प्रेमचंद ने यह बताया है कि जिसका उद्देश्य प्रजा की रक्षा करनी होती है और उन्हें सही रास्ते पर लाना होता है, वे लोग प्रजा की बरबादी देखकर भी ऑंखे नहीं खोल रहे थे। मैकू के जाने पर स्वयंसेवक ने फिर से उन्हें अपना वायदा याद करवाया। जब मैकू ताड़ीखाने पहुँचा तो ठेकेदार ने उसका अच्छी तरह से स्वागत किया और उसे मुफ्त में ताजी ताड़ी भी मॅंगवायी, लेकिन मैकू ने एक बड़ा सा डंडा लिया और दुकानदार सहित कई पियक्कड़ों को पीटा और कितनी सारी बोतलों को तोड़ डाला। किसी का सर फूटा तो किसी की कमर टूटी। स्वयंसेवकों ने उसे रोकना चाहा तथा उनका गुस्सा उन पर उतारने को कहा; लेकिन कादिर ने जब उसे रोककर उसके पागलपन का कारण पूँछा तब मैकू ने जो कहा वह ध्यातव्य है "मैकू ने लाल-लाल आंखों से उसकी ओर देखकर कहा- हॉं, अल्लाह का शुक्र हे कि में जो करने आया था, वह न करके कुछ और ही कर बैठा। तुममे कूवत हो तो वालंटरों को मारो, मुझमें कूवत नहीं हैं। मैंने तो जो एक थप्पड़ लगाया, उसका रंज अभी तक है और हमेशा रहेगा ! तमाचे के निशान मेरे कलेजे पर बन गये हैं। जो लोग दूसरों को गुनाह से बचाने के लिए अपनी जान देन के लिए खड़े हैं, उन पर वही हाथ उठाएगा, जो पापी है, कमीना है, नामर्द है। मैकू फिसादी है, लठैत है, गुंडा है, पर कमीना और नामर्द नहीं है। कह दो पुलिसवालों से चाहे तो मुझे गिरफ्तार कर लें।" 83

यहॉं पर प्रेमचंद स्पष्ट रूप से गांधीवादी विचारधारा के रूप से दिए गये मैकू के वक्तव्य को लोगों के सामने प्रस्तुत करते हुए बताते हैं कि जिस तरह पत्थर को पानी की एक बूँद भी पिघला सकती है उसी तरह किसी बलवान और लठैत इन्सान को अगर पिघलाना है तो बल का प्रयोग न करके प्रेम एवं विनम्रता का प्रयोग करना चाहिए। इससे जो परिवर्तन होता है वह उसकी आत्मा का होता है, जो जीवन पर्यन्त चलता रहता है। गांधीजी ने अपनी इसी सोच के कारण अहिंसा का रास्ता अपनाया था। जिससे प्रभावित होकर प्रेमचंद ने साहित्य की रचना की। मैकू ने सारे ताड़ीबाजों को यह हिदायत दी कि आज के बाद यहॉं कोई ताड़ी पीने नहीं आएगा और उस पैसे से अपने बाल-बच्चों एवं घरवालों को अच्छा खाना-कपड़ा देंगें। मैकू यह भी समझता है कि कांग्रेस के स्वयंसेवक उनके दुश्मन नहीं हैं बल्कि वे उनकी भलाई का सोच रहे हैं। जब मैकू वहॉं से जाता है तब सब उसे बड़ी श्रद्धा, प्रेम एवं गर्व से देखते हैं। इस पर डॉ. रत्नाकर पाण्डेय कहते हैं कि "जिस दुष्प्रवृत्ति के निवारण को दृष्टि में रखकर प्रेमचंद ने इस कहानी की सृष्टि की है उसके परिवर्तन से अनपढ़ जनता पर समाज में क्रान्तिकारी चेतना का सफल प्रयोग किया गया है। साहित्य नहीं समाज के परिवर्तन को ध्यान में रखकर प्रेमचंद ने ऐसी कहानियों की

सृष्टि की है। पूरी कहानी की सामग्री किसी शराब के ठेके की प्रत्यक्ष घटनाओं की दृष्टि में आदर्श के सृजन में यहाँ भी तल्लीन दिखाई पड़ती है।'' 84

3. दुस्साहस

इस कहानी का प्रथम प्रकाशन हिन्दी में 18 जून को 'आज' में हुआ। बाद में मानसरोवर-8 और प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ-2 में भी इसका संकलन किया गया। उर्दू में 'बज्मे परेशा' नामक शीर्षक से जमाना में अप्रैल 1922 में प्रकाशित हुई।

इस कहानी में भी प्रेमचंद ने लखनऊ के नौबस्ते मुहल्ले के एक मुंशी मैकूलाल मुख्तार नामक पात्र को माध्यम बनाकर नशेबन्धी का समर्थन किया है। मुंशीजी पेशे से एक कुशल वकील है, पर बड़े दयालु, उदार एवं सज्जन पुरुष थे। बस साधु-संतों की संगति होने के कारण कुछ तत्वज्ञान और गांजे चरस का अभ्यास हो गया था, रही शराब वह उनकी कुल प्रथा थी। शराब, गांजे, चरस का दम भरने के बाद ही उनकी ज्ञान शुद्धि होती और वह वैराग्य ध्यान में तल्लीनता से कानूनी मसौदे खूब लिखते। उनकी सज्जनता की वजह से मुहल्ले मे उनका बड़ा रोब था और एक्केवान, ग्वाले और कहार आदि उनकी आज्ञा का पालन करते थे। मुंशी जी रोज शाम को अलगू को दो रूपये देते। अलगू उससे शराब की बोतल एवं चरस-गांजा ले आता और फिर रात के 10 बजे तक मुवक्किलों और सहवासियों की महफिल जमती। रोज की तरह अलगू आज भी शराब लेने गया और मुंशीजी उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। काफी देर होने पर भी अलगू नहीं आया और जब आया तो उसके हाथ खाली थे। मुंशी ने बड़े विनम्र भाव से इसका कारण पूंछा, जिस पर अलगू ने बताया कि स्वराजवालों ने उसे जाने नही दिया। इस पर मुंशी जी को गुस्सा आया और अपने चारों साथी ईदू, रामबली, बेचन और झिनकू को लेकर शराबखाने की ओर चल पड़े। वे शराबखाने पहुँचे ही थे कि मौलाना जामिन जो शहर के मशहूर मुजतहिंद थे; उन्होंने ईदू को नमाज के वक्त की हिदायत देते हुए उसके पैरों में मजहब की बेड़ियाँ डाल दी और वह आगे न जा पाया। इसी तरह स्वामी घनानन्द जो सेवासमिति के संस्थापक एवं प्रजा के बड़े हितैषी थे, उन्होंने मुंशी और उनके तीन साथी रामबली, बेचन और झिनकू को पंचामृत देना चाहा ताकि उनका कल्याण हो पर मुंशी के अलावा तीनों ने पंचामृत लिया और मुंशी के साथ आगे न बढ़े। इस पर मुंशी उन्हें कायर कहकर अकड़ कर शराब की दुकान पर जाते है और शराब लेतें हैं। जब मुंशी शराब लेकर लौटते है तो वहाँ खड़े सारे लोग उसकी निन्दा करते हैं तथा अगर पुलिस उनका बचाव न करती तो उनको आटे -दाल का भाव मालूम पड़ता, मुंशी के करीबी चार दोस्त भी उन्हें छोड़कर चले गये थे। झिनकू और रामबली सेवासमिति और स्वामी घनानन्द की तारीफ कर रहे थे। जिस पर बेचन ने कहा कि "मुख्तार अपने

सामने किसी को गिनते ही नहीं। आदमी कोई बुरा काम करता है तो छिप के करता है, यह नहीं कि बेहाई पर कमर बॉंध ले।'' 85 यहॉं पर प्रेमचंद एक सामान्य आदमी की सोच पर प्रकाश डालते हैं। जब तक शराब की दुकानों पर पिकेटिंग नहीं होती है या धार्मिक नेता इस मामले का विरोध नही करते हैं तब तक आम इन्सान शराब पीने वाले को बुरा नही मानता है। लेकिन जैसे ही सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू हुआ और गांधी जी ने देशवासियों की रक्षा के लिए शराब की दुकानों को पिकेटिंग करने का आदेश दिया और इसमें धार्मिक नेता शामिल हुए। जिसमें सबसे पहले वे लोग थे जो निम्न एवं अनपढ़ थे। वे तुरन्त धर्म एवं साधु-सन्यासियों के मान हेतु शराब छोड़ देते हैं, लेकिन वह वर्ग जो पढ़ा-लिखा और समझदार था वह देश की स्थिति जानते हुए भी अपनी अकड़ एवं आदत को नहीं छोड़ पाता है। साधु-सन्यासी उनके लिए ढोंगी थे। उनके लिए सिर्फ अपनी जरूरते आवश्यक थीं फिर चाहे वे जरूरतें उनके अपमान का कारण ही क्यो न बने। जैसे मुंशीजी को शराब की आदत निन्दा का पात्र बनाती है। नौबत यहॉं तक आ जाती है कि पुलिस को उनकी रक्षा के लिए कान्सटेबल तक को भेजना पड़ता है। लोग तो ताने कसते हैं पर उनके मित्र भी उनके लिए उनके बारे में अच्छा नहीं सोचते हैं। उनके चारो मित्रों ने शराब छोड़ दी और जब मुंशीजी ने उन्हें अपने घर पर शराब पीने के लिए बुलाया तब उनमें से कोई न आया। वे जब अकेले पीने बैठे तो उन्हें अपना अपमान याद आया। वे जब भी पीते थे उनके साथ कोई न कोई होता था। उनके सभी साथी उनसे ज्यादा पियक्कड़ थे जब उन्होने शराब छोड़ दी तो वे मन ही मन सोचते हैं कि "लोग इसे कितनी त्याज्य वस्तु समझते हैं ; इसका अनुभव मुझे आज ही हुआ, नहीं जो एक सन्यासी के जरा से इशारे पर बरसों के लत्ती पियक्कड़ यो मेरी अवहेलना न करते। बात यही है कि अंत:करण से सभी इसे निषिद्ध समझते हैं। जब मेरे साथ के ग्वाले, एक्केवान और कहार तक इसे त्याग सकते हैं तो क्या में उनसे भी गया गुजरा हूॅं? इतना अपमान सहकर जनता की निगाह में पतित होकर सारे शहर में बदनाम हो कर नक्कू बनकर एक क्षण के लिए सिर में सरूर पैदा कर लिया तो क्या अच्छी बात है। यह चारों इस घड़ी मेरी निन्दा कर रहे होगें, मुझे नीच समझ रहें होंगे। इन नीचों की दृष्टि से मैं नीचा हो गया । यह दुरवस्था नहीं सही जाती। आज इस वासना का अंत कर दूंगा, अपमान का अंत कर दूंगा।'' 86

यहॉं पर हमें साफ रूप से पता चला कि यह शराब, गांजा, चरस मुंशीजी के अकेलेपन का कारण था। जब वे अकेले थे तब इनको माध्यम बनाकर सारे मित्रों एवं सहवासियों के साथ अपना अकेलापन दूर करते थे और आज भी जब इन्हीं की वजह से अकेले पड़े तो उन्होंने इन सारी चीजों को फेंक दिया और

अपनी इन कुवासनाओं के कारण वह जितना अपमानित हुए थे वह एक पल में दूर हो गया। बोतल जमीन पर टूटने के कारण सबको पता चला कि मुंशीजी ने शराब छोड़ दी है।

प्रेमचंद उस समय के शराब पीने वालों की हर परिस्थिति को अपनी कहानियों के माध्यम से दर्शाते हैं। शराब कोई व्यक्ति अपनी लत के कारण पीता हो या अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए पीता हो लेकिन वह शरीर और देश दोनों के लिए हानिकारक है। इसी उद्देश्य से गांधीजी ने शराब की दुकानों का पिकेटिंग करवाना शुरू किया था। जिसे प्रेमचंद ने भी अपने साहित्य को माध्यम बनाया।

4. **दीक्षा**

जिसका प्रथम प्रकाशन हिन्दी में सितम्बर 1924 को माधुरी में हुआ था। तथा मानसरोवर-3 और प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ - 3 में इसका संकलन किया गया है। उर्दू में भी तोबा नाम से फिरदौसे ख्याल में भी इसका संकलन मिलता है।

वैसे तो यह कहानी बिल्कुल सामान्य एवं हास्यास्पद है लेकिन इसमे शराब के दुष्परिणामों को निरूपित किया गया हैं। इस कहानी में प्रेमचंद ने यह बताया है कि शराब किस तरह से किसी मनुष्य की बदनामी का कारण बनती है। यह कहानी प्रेमचंद ने आपबीती के रूप में प्रस्तुत की है। कहानी की शुरुआत बचपन के स्कूल से होती है। जहाँ प्रेमचंद जी बताते हैं कि मैंने स्कूल के प्रधान महोदय को विश्वास दिलाते हुए प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर करवाते हुए दीक्षा ली कि मैं आजीवन शराब नहीं पीऊँगा। घर पर भी अब मैं पिताजी को शराब न पीने देता। एक बार तो मैंने उनकी शराब की बोतल तोड़ दी। पिताजी को जब पता चला तो वह बाजार से दूसरी बोतल ले आए और मेरी तरफ देखकर मुस्कराए। कॉलेज में मेरे सारे दोस्त भी पीते थे, पर मैं न पीता था। उनके चिढ़ाने पर भी में अटल रहा। कालेज के चौथे वर्ष में मेरे घर लड़का पैदा होने पर मैंने सबको दावत दी और मैंने मित्रों को गिलास भर-भरकर शराब पिलाई, जो मेरे प्रतिज्ञा पत्र के खिलाफ था लेकिन मैंने उसमें भी बीच का रास्ता निकाल लिया। खुद को समझाने लगा कि मैने तो नही पी। दोस्तो को पिलाई। कालेज के बाद मेंने शहर में वकालत शुरू की, सैर-सपाटे, आमोद-प्रमोद सब स्वप्न हो गये। जीवन संग्राम की चक्की में पिसने लगा। छुट्टियों में भी दम लेने की फुरसत न मिलती थी। दिनभर तो काम करता और आधी रात को सोने को मिलता। लोगों के घरों में जाना, उनकी चौखटों को चूमना, दरबान की गालियाँ खाना एक दिनचर्या जैसी बन गई थी। कितनी माथा-पच्ची करने के बाद दो रोटी खाने को पाता तब यह लगता कि क्या इसी दो रोटी के लिए यह सब कर रहा हूँ। मैंनें सोचा कि कहीं घूमने जाऊँ पर मुवक्किलों के तितर बितर होने का डर था। जब मैं थियेटर जाने के लिए कभी सोचता तो आधी रात को सोने को मिलता तब मुझे ख्याल आया कि

शराब ही इस मर्ज की दवा थी। लेकिन मैंने दीक्षा ले रखी थी। आज मैं उस दिन को कोस रहा हूँ, सोचता हूँ कि होली में दोस्तों को बुलवाकर यह प्रतिज्ञा तुड़वाऊँगा, ताकि परिवारवालों को कह सकूँ कि दोस्तो ने जबरदस्ती पिला दी और मेरी इज्जत भी उनके सामने बची रहेगी।

प्रेमचंद यहाँ साफ तौर पर बताना चाहते हैं कि जैसे ही मशीनी युग एवं आधुनिकता का आगमन हुआ वैसे ही शहरीकरण भी शुरू हो गया। लोग ज्यादा पैसे कमाने की लालच में शहर की ओर चल देते हैं और वहाँ दिन रात काम करके अपनी शांती एवं चैन को खो देते हैं। फिर भी समय पर दो वक्त की रोटी मुश्किल से जुटा पाते हैं। अंत में मानसिक सुख-शांती के लिए शराब, अफीम, गांजा जैसी बुरी आदतों का सहारा लेते हैं। प्रेमचंद यह बात इसलिए कहतें हैं क्योंकि वे खुद फिल्मों में काम करने की इच्छा से मुंबई गये थे लेकिन स्वास्थ्य ने उनका साथ नहीं दिया वे बीमार हो गए और वापस आ गए। प्रेमचन्द बताते हैं कि मेरी मनसा पूरी हुई, होली का दिन आया, दोस्तों के साथ मेरा व्रत टूटा। शुरुआत में शाम को दो चार दोस्त या अकेले शराब पीता बड़ी अच्छी नींद आती पर सुबह बदन दर्द करता। दोस्तों के सलाह के अनुसार फिर संध्या किए वगैर खुमारी उतारने के लिए शराब पीता और बाद में वह मेरी आदत सी बन गई। उसके बिना न तो मुझे चैन मिलता और न पहले जितनी स्फूर्ति ही रह गई थी। शाम को तो दो कदम चलना तक मुश्किल हो जाता था। एक बार बारिस के मौसम में मुझे बाहर जाना पड़ा। सोचा था कि शाम तक वापस आ जाऊँगा पर तेज बारिश के कारण न आ सका। जंट साहब डाकखाने में ठहरे और मैं बैठा हुआ अपनी किस्मत पर रो रहा था। गाँवभर में शराब न थी और मेरी हालत खराब हो रही थी। डाक बंगले में साहब बहादुर शराब पी रहे थे, मैंने सोचा उनसे एक प्याली शराब माँग लूँ, पर मेरी हिम्मत न हुई। जब मुझसे न रहा गया तो मैंने साहब के खानसाने को दिन भर की कमाई की आधी रकम 10 रूपये देकर एक बोतल शराब की बोतलों में से चुराकर मँगाई। बोतल आने पर मैंने शराब पीकर अपनी आत्मा को तृप्त किया।

इसके माध्यम से प्रेमचंद यहाँ एक व्यसनी इन्सान के मनोभावों को दर्शाते हुए बताना चाहते हैं कि किस तरह से एक व्यसन इन्सान को किस तरह से चूसता है और उसको आर्थिक अपंग बना देता है। यहाँ तक तो हमने देखा कि एक व्यसनी इन्सान अपनी आदत के लिए क्या-क्या नहीं करता है पर अब कहानी एक ऐसे मोड़ पर आती है जहाँ प्रेमचंद यह बताते है कि व्यसन किस प्रकार इन्सान की बदनामी का कारण भी बनता है।

रात को शराब पीकर मैंने बोतल को छाते के नीचे छिपाकर उस पर गाउन रख दिया। लेकिन सुबह झाड़ू वाले ने जगाया तब पता चला कि बोतल नहीं है। मैं वहाँ से डाकखाने गया तो देखा कि साहब एक

बोतल कम होने के कारण खानसाने को पीट रहे थे, मुझे डर था कि कहीं वह बता न दे इसलिए सारे देवी-देवताओं की प्रार्थना कर रहा था। साथ ही शराब और शराब पीनेवालों की तोबा कर रहा था। उसी समय साहब खनसाने को लेकर मेरी तरफ आए और मुझसे शराब के बारे में पूँछा मुझसे सच निकल गया, इससे उन्हें पता चला कि मैंने शराब पी है। मुझे डर था कि वे कहीं मेरी सनद न ले लें , कहीं मुकदमा न चलवा दें, उन्होंने दो सिपाहियों से हाथ पकड़वा कर मेरा मुँह काला किया। मैंने सोचा कि इन्हीं लोगों के हाथों हमें स्वराज लेना है और मेरी यह दुर्दशा हो रही है तो स्वराज मिल चुका। मैं वहाँ से भागा। सुबह का वक्त था, आफिस वाले आए थे। सब मुझ पर हँस पड़े, मैंने जाकर नाले में मुँह धोया। डाकबंगले में मेरा सामान था पर मुझे चिन्ता न थी, कालिख जो निकल गई थी। "पूरे पांच साल हुए, मैंने शराब का नाम नहीं लिया, पीने की कौन कहे। कदाचित मुझे सन्मार्ग पर लाने के लिए यह ईश्वरीय विधान था। कोई युक्ति, कोई तर्क, कोई चुटकी मुझ पर इतना स्थायी प्रभाव न डाल सकती थी। सुफल को देखते हुए तो में यही कहूँगा कि जो कुछ हुआ बहुत अच्छा हुआ। वही होना चाहिए था ; पर उस समय दिल पर जो गुजरी उसे याद करके आज भी नींद उचट जाती है।'' 87

जिस तरह प्रेमचंद जी ने वकील की आपबीती को दर्शाया है, उससे तो हँसी भी आती है और रुलाई भी। इतना तो साफ है कि व्यसन व्यक्ति को बरबाद कर देती है। व्यक्ति की बदनामी का कारण भी बनती है। आज पाँच साल बाद जब मैं यह किस्सा सबको सुनाता हूँ, जिसमें मैंने कुछ नया भी जोड़ दिया कि शराब पीकर मैंने साहब को मारा भी था ताकि मैं लोगों के सामने कम शर्मिन्दा हूँ। यहाँ प्रेमचंद ने वकील के माध्यम से यह बताने का प्रयत्न किया हे कि किसी भी चीज की आदत व्यक्ति को नुकसान के अलावा कुछ नहीं देती है। शराब पीना वैसे भी बुरी आदत है और उस पर अगर इस तरह की आदत लग जाए कि उसके बिना चैन ही न पड़े तो वह मनुष्य की दुर्गति और विनाश कारण भी बन सकती है।

5. लाल फीता या मजिस्ट्रेट की इस्तीफा

इस कहानी का प्रथम प्रकाशन उर्दू में मासिक पत्रिका जमान में जुलाई 1921 में हुआ था, साथ ही इसका संकलन उर्दू में ख्वाबेखयाल में भी मिलता है। इसका हिन्दी रूपान्तर 'लाल फीता' शीर्षक से प्रेमचतुर्थी में संकलित है तथा लालफीता या मजिस्ट्रेट का इस्तीफा नाम से प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ-2 में भी संकलित है।

इस कहानी में प्रेमचंद ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि बाबू हरिविलास जो जाति के कुरमी हैं पर पढ़ने बहुत होशियार है, इसलिए उसके पिता उन्हें खेती में न डालकर खूब मेहनत करके पढ़ाते हैं।

उसकी पढ़ाई में उन्होंने अपनी जमीन भी बेच दी। हरिविलास पढ़कर 'डिप्टी मजिस्ट्रेट बन गये। उन्होंने नीतिशास्त्र का गहन अध्ययन किया था, तथा वे एक न्यायप्रिय इन्सान थे। वे केवल कानून से डरते थे। वे कभी घूस नहीं खाते थे, इसलिए उनका तबादला होता रहता था तथा पद भी कम हो गया। अब तो उनका परिवार भी बड़ा हो गया था। तीन बेटे-शिवविलास, संतविलास, और श्रीविलास तथा एक लड़की अंजनी थी। 20 साल की नौकरी के बाद एक दिन उन्हें एक लाल फीता आया, जिसमें हिदायत दी गई थी कि शराब पीने वालों को रोकने वाले संगठन को गिरफ्तार किया जाए। यह फीता हरिविलास के उसूलों के खिलाफ था इसलिए काफी सोच समझकर उन्होंने इस्तीफा दे दिया। इस्तीफे के बाद उधारी के कारण उनका सब कुछ नीलाम हो गया। वे परिवार सहित गॉव चले गये। परिवार वाले बंद पुराने घर को साफ करने लगे, जिसमें गॉव वालों ने भी मदद की। हरिविलास के पास अब जमीन न थी। उसी दौरान गॉव के जमींदार ठाकुर करनसिंह हाथी पर आए और हरिविलास के साथ बैठे। करनसिंह ने उन्हें गॉव के पंचायत का न केवल प्रमुख बनाया लेकिन हरिविलास के पिता रामविलास ने दिया हुआ रेहननामा भी उन्होंने फाड़ दिया। यही कहानी अंत है।

इस कहानी में प्रेमचंद ने यह दर्शाना चाहा है कि पढ़े लिखे लोग बड़े अफसर बनकर देश को सुधारने की कोशिश करें, न कि घूस, जाति-पॉति के चक्कर में फॅसकर सिर्फ पैसा बनाए। प्रेमचंद ने खास करके अपने समय के उन अफसरों पर व्यंग्य किया है जो हिन्दुस्तानी होते हुए भी अंग्रेजों के चमचे थे। वे यह नहीं चाहते थे कि हमें हमारे देश को गुलामी से निकालना है, पर वे मात्र यही याद रखते थे कि हमें अफसर बनकर पैसा बनाना है। हरिविलास ने शराब का असमर्थन करके भले ही अपनी नौकरी गॅवा दी, पर लोंगों से उसने मान-सम्मान, आदर एवं सहारा तथा सहानुभूति पाई, जो उसे एक सच्चा देशभक्ति बनाती है।

6. यह भी नशा, वह भी नशा

इस कहानी का प्रथम प्रकाशन अज्ञात है, पर कफन और प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियॉ-5 में इसका संकलन किया गया है।

यह एक सामान्य हास्य पर आधारित कहानी है। लेकिन यह कहानी हंसते-हंसते एक अच्छी सीख देती है। इस कहानी में राय साहब पंडित घसीटेलाल की बारहदरी में भंग बना रहे थे तभी जिलाधीश मिस्टर बुल जिन्हें भारतीय रीति-रिवाज में काफी जिज्ञासा थी। शायद वे इस पर किताब लिख रहे थे। वे आए । बुल ने उनके साथ होली खेली तथा भंग पिया। इस पर रायसाहब फूले न समाए। दूसरे दिन वे पंडित से मुहूर्त निकलवा कर सज धजकर शाम को बुल साहब के घर पर गए। बुल साहब शराब पी रहे थे।

शराब की बदबू चारों ओर फैल रही थी। रायसाहब नाक सिकोड़ कर गये। बुल ने उन्हें शराब पीने के लिए कहा पर रायसाहब ने बताया कि हमारे धर्म में इसे वर्जित माना गया है। तो बुल ने रायसाहब को जबरदस्ती पिलाने की कोशिश की, पर उनको धक्का देकर रायसाहब ने कहा कि यह पाप है। इस पर बुल ने कहा कि "तुम पागल की माफिक बात करता है। धरम का किताब बंग और शराब दोनों को बुरा कहता है। तुम उसको ठीक नहीं समझता। नशा को इसलिए सारी दुनिया बुरा कहता है कि इससे आदमी का अकल खतम नहीं हो जाता है बंग पीने से पंडित और देवता लोगो का अकल कैसे खतम नहीं होगा। यह हम नहीं समझ सकता। तुम्हारा पंडित लोग बंग पीकर राक्षस क्यों नहीं होता ! हम समझता है कि तुम्हारा पंडित लोग बंग पीकर खप्त हो गया है, तभी तो वह कहता है, यह अछूत है, वह नापाक है, रोटी नहीं खाएगा, मिठाई खाएगा। हम छू लें तो तुम पानी नहीं पियेगा। यह सब खप्त लोगों की बात।" 88

यहाँ प्रेमचंद मिस्टर बुल के माध्यम से यह साफ रूप से कहना चाहते हें कि नशा चाहे शराब का हो या भंग का वह बुरा ही होता है। यह मनुष्य को समाप्त कर देता है, उसके सोचने समझने की शक्ति खत्म कर देता है। प्रेमचंद यह भी उजागर करना चाहते हैं कि नशा न केवल मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन लाता है, परंतु वह जातिवाद जैसी नीतियों को भी पैदा करता है। ब्राह्मणों में यह मान्यता प्रचलित है कि भंग देवी-देवताओं का प्रसाद है और वह केवल उच्चवर्ण के लोग ही पी सकते हैं, उनकी यही सोच छुआ-छूत, जाति-पाँति को जन्म देती है।

मूल रूप से प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के माध्यम से उस समय के न केवल नशे का विरोध किया है पर उन्होंने इसके माध्यम से नशे से होने वाले दुष्परिणामों एवं अपनी देशभक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण भी प्रस्तुत किया है।

* स्वदेशी कपड़ों की पक्षधर कहानियाँ

जब अंग्रेज भारत में आए तब से वे भारत को किसी न किसी तरीके से चूसने का प्रयत्न ही करते रहे। अंग्रेज उस समय के सर्वश्रेष्ठ कुटिल व्यापारी राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने हिन्दुस्तान को साम्राज्य के जुए में बाँधकर अपना आर्थिक हित परिपूर्ण किया। इसलिए यह सर्वमान्य तथ्य है कि भारत की लूट के बल पर ही आधुनिक इंग्लैंड का निर्माण हुआ है। रामदीन गुप्त इसी सन्दर्भ में कहते हैं कि "हिन्दुस्तान लंकाशायर और मानचेस्टर के बड़े-बड़े कारखानों के लिए कच्चा माल और उससे तैयार माल के लिए एक विस्तृत तथा सुलभ बाजार प्रदान करता था। भारत के नेताओं ने इस तथ्य को बहुत पहले ही हृदयंगम

कर दिया था। यही कारण है कि राष्ट्रीय आन्दोलन के शुरू से ही स्वदेशी पर इतना बल दिया जाता रहा है। यद्यपि उद्योगों के विकास के लिए आवश्यक सभी खनिज पदार्थ और प्राकृतिक साधन यहाँ अतुलित परिमाण में उपलब्ध थे, लेकिन विदेशी शासको ने हिन्दुस्तान को एक कृषिप्रधान देश बनाए रखने की साम्राज्यवादी नीति को क्रियान्वित करने में कोई कोर-कसर उठा नहीं रखी। इसी साम्राज्यवादी उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्होंने भारत के परम्परागत कपड़ा उद्योग तथा दूसरे ग्रामीण उद्योग-धन्धों और कला-कौशल को सदा के लिए पंगु बनाने का सफल प्रयत्न किया। कांग्रेस के बीसवें अधिवेशन में एक प्रस्ताव पर बोलते हुए करन्दीकर ने मिस्टर आर्थर बालफोर के एक भाषण के कुछ अंश उद्धृत किए थे,जिनसे पता चलता है कि आयरलैएड में भी अंग्रेजों ने घरेलू उद्योग-धन्धों को नष्ट करने या पंगु बनाने की सुपरिचित साम्राज्यवादी नीति अपनाई थी।'' 89

विदेशी मशीनों की बनी वस्तुओं का प्रभाव यह हुआ कि भारतीय कृषि-व्यवस्था धीरे-धीरे नष्ट होती गई। रामदीन गुप्त इसी सन्दर्भ में कहते हैं कि "संभवत: कुछ लोगों को यह जानकर आश्चर्य हो कि आरम्भ में ईस्ट इण्डिया कंपनी हिन्दुस्तान से इंग्लैण्ड कपड़ा भेजती थी और अंग्रेज व्यापारी उस पर 300 प्रतिशत तक मुनाफा कमाते थे। शायद यह जानकर भी हमें ताज्जुब हो कि 1700 ई0 में इंग्लैण्ड में एक ऐसा कानून पास किया गया था, जिसके अनुसार भारतीय रेशमी वस्त्र पहनने वाले प्रत्येक अंग्रेज पर 5 पाउण्ड का जुर्माना किया जाता था। तब तक बाष्पशक्ति का अविष्कार नहीं हुआ था। 1783 में बाष्प इंजन का आविष्कार हुआ और 1803 में पहली बार भारत में 3 लाख रूपये के मूल्य का कपड़ा मँगाया गया। 1829 में यह राशि बढ़कर 29 लाख और 1929 में 66 करोड़ हो गई। इस प्रकार कार्ल मार्क्स के शब्दों में इंग्लैण्ड ने कपड़े की मातृभूमि को अपने कपड़ो से पाट दिया। इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व भारत इंग्लैण्ड ही नहीं यूरोप और एशिया के दूसरे मुल्कों के भी सूती तथा रेशमी कपड़ों का निर्यात करता था। लेकिन जब हिन्दुस्तान के लूट के बल पर इंग्लैण्ड एक कृषि प्रधान देश से उद्योग-प्रधान देश बनने लगा तो यह आवश्यक हो गया कि निर्यात करने वाले भारत को आयात करने वाला देश बना दिया जाए। फलत: ईस्ट इण्डिया कंपनी द्वारा अब तक प्रयुक्त भारत के शोषण के तरीको में रद्दोबदल करना जरूरी हो गया। अंग्रेजों ने भारत में दोहरी शोषण पद्धति अपनाई, एक ओर परम्परागत उद्योगों का विनाश और दूसरी ओर सरकारी मशीनरी के बढ़ते हुए खर्च को पूरा करने के लिए नित नवीन करो में वृद्धि ! इस दोहरे शोषण के फल स्वरूप पैदा होने वाली हिन्दुस्तान की कंगाली का एक रूप उन अकालों और प्लेग आदि महामारियों के प्रकोप में देखा जा सकता है, जिनका शिकार वह 19 वीं शताब्दी में हुआ।'' 90

फलत: विदेशी वस्तुओं की मांग बढ़ने लगी और लोग स्वदेशी वस्तुओं की अपेक्षा करने लगे। भारतीय व्यापारी वर्ग ने प्रथम महायुद्ध के समय उद्योगों में अपनी पूंजी लगाकर अपने को सशक्त बना लिया। जिससे चाय बागान और जूट की मिलें विदेशी पूँजीपतियों से भारतीय पूंजीपतियों के हाथ में आ गयी। जिससे एक ओर राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि हुई और सामान्य जनता गरीब होती गई। इन्हीं कारणों के फलस्वरूप गांधीजी ने स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर जोर देकर सामान्य गरीब जनता को जीवन यापन का सुगम पथ दिखाया। खादी का प्रयोग इस दिशा में गांधीजी का पहला कदम था। स्वतंत्र्य आन्दोलन के दूसरे चरण में सावरकर, और लोकमान्य तिलक नें गांधीजी से पहले विदेशी कपड़ों का बहिष्कार किया था उसमें सावरकर ने विदेशी कपडों की होली पूना में जलाई थी। गांधीजी मशीन तथा औद्योगिक सभ्यता को ही जनता के शोषण का प्रमुख कारण मानते थे।

1. सुहाग की साड़ी

यह कहानी केवल हिन्दी में जनवरी 1922 में 'प्रभा' में तथा मई 1930 में 'उषा' में पुन: प्रकाशित हुई। मानसरोवर-7 प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियॉ-2 में भी इसका संकलन किया गया है। यह कहानी अपशकुन और अंधविश्वास का विरोध करती कहानियॉ नामक शीर्षक में भी आ चुकी है।

प्रस्तुत कहानी में जहॉ हमें एक ओर प्रेमचंद द्वारा अंधविश्वास का खंडन देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर इस कहानी की नायिका गौरा की सुहाग की साड़ी जो विदेशी कपड़े की बनी थी उसके जलने से लोगों में स्वदेशी वस्तु के लिए जो मान सम्मान पैदा होता है, वह दिखाई देता है। रतन जो गौरा का पति है और सच्चा देशभक्त भी, वह गौरा को विदेशी कपड़े स्वयंसेवको को देने के लिए कहता है, लेकिन गौरा एक रूढ़िगत एवं कुलमर्यादा पर जान देने वाली स्त्री है वह अपने रेशमी कपड़े देना नहीं चाहती थी। पति के आदेश से उसने अपने बाकी विदेशी कपड़े तो दे दिए, पर अपनी सुहाग की साड़ी न देती है इस पर उसका पति रतन कहता है कि "मैं विदेशी वस्तु को यह शुभ स्थान नहीं दे सकता। इस पवित्र संस्कार का यह अपवित्र स्मृति-चिन्ह घर में नहीं रख सकता। मैं इसे सबसे पहले होली की भेंट करूँगा। लोग कितने हतबुद्धि हो गये थे कि ऐसे शुभ कार्यों में भी विदेशी वस्तुओं का व्यवहार करने में संकोच न करते थें। में इसे अवश्य होली में दूँगा।'' 91

यहॉ प्रेमचंद अपनी देशभक्ति को दर्शाते हैं। प्रेमचंद का मानना है कि शादी जैसी पवित्र रश्म में हमें उन वस्त्रों को धारण करना चाहिए जिनमें किसी की खुशी, दुआ शामिल हो, न कि वे वस्त्र धारण करने चाहिए जिसमें किसी की बरबादी हो। विदेशी कपड़ों के कारण ही भारत के लाखों लोग बेकार और बेरोजगार हैं। उन बेकार लोंगों की बरबादी का कारण विदेशी कपड़े थे तो फिर वे कपड़े शुभ कार्यों में

कैसे पहने जा सकते हैं। गौरा अंत में मान जाती है, परन्तु उसे अनिष्ट शंका अपशकुन आदि अन्दर ही अन्दर खाए जातें है। गौरा का डर तब समाप्त हुआ जब वह अपने पति के साथ स्वदेशी बाजार की सैर पर गई थी। वहाँ अपने घर के नौकर रामटहल और केसर महरी मिली। वहाँ दोनों ने गौरा के सुहाग की साड़ी जलने पर स्वदेशी वस्तुओं को बिक्री का करण बताया। तथा केसर ने कहा कि "यह सब आपकी साड़ी की महिमा है। उसकी बदौलत हम गरीबों के कितने ही घर बस गये। एक महीना पहले इन दुकानवालों में से किसी को रोटियों का ठिकाना न था। कोई साईसी करता था, कोई तासे बजाता था, यहाँ तक कि कई आदमी मेहतर का काम करते थे। कितने ही भीख माँगते थे। अब सब अपने धंधे में लग गये हैं। सच पूँछो तो तुम्हारी सुहाग की साड़ी ने हमें सुहागिन बना दिया। नही तो हम सुहागिन होते हुए भी विधवाएं थी। सच कहती हूँ ,सैकड़ों जवानों से नित्य यही दुआ निकलती है कि आपका सुहाग अमर हो, जिसने हमारी रॉंड़ जात को सुहाग दान दिया।'' 92

इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद अंधविश्वास की उस कड़ी को तोड़ते भी हैं साथ ही साथ विदेशी वस्तु के बहिष्कार से होने वाले फायदे एवं देश वासियों की आर्थिक सम्पन्न्ता को साफ रूप से दिखाया है। गौरा का अंधविश्वास तो तूटता ही है पर वह स्वदेशी वस्तु की चाहक भी बनती है।

2. लाल फीता या मजिस्ट्रेटका इस्तीफा - 2

इस कहानी का प्रकाशन उर्दू में जुलाई 1921 में उर्दू मासिक पत्रिका 'जमाना' में तथा ख्वाबेखयाल में हुआ था। हिन्दी रूप लाल फीता से यह कहानी प्रेमचतुर्थी में संकलित की गई। बाद में इसका संकलन प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहॉनियॉ-2 में लाल फीता या मजिस्ट्रेट का इस्तीफा शीर्षक से किया गया।

इस कहानी के श्रीविलास और शिवविलास नामक पात्रों के माध्यम से उस समय के हमारे देश के उन आंकड़ों को प्रस्तुत किया गया है जो हमें यह ज्ञान प्रदान करती हैं कि भारत में कितना विदेशी माल आता है और हम उसे किस तरह से कम कर सकते हैं। इसी सन्दर्भ में कहानी का पात्र श्रीविलास कहता है कि "हमारे देश में 70 करोड़ का कपड़ा हर साल विलायत से आता है। शायद 10 करोड़ का कपड़ा इटली, जापान, फ्रान्स, आदि देशों से आता होगा। हम तुम और भाग्यवती आध पाव सूत रोज कातें और साल में 300 दिन काम करें तो तीन मन सूत कात लेंगे। 3 मन सूत में कम से कम 100 जोड़े धोतियाँ तैयार होंगी। अगर एक जोड़े का दाम 4 रूपये ही रखें, तो हम साल भर में 400 रूपये की धोतियाँ बना लेंगे। धुनाई मैं आप कर लूँगा। यह तीन प्राणियों के साधारण परिश्रम का फल है। यदि देश की आबादी के केवल 50 लाख मनुष्य यह काम करने लगें तो हमारे देश को 80 करोड़ वार्षिक बचत हो जायगी।

अगर एक करोड़ मनुष्य इस धन्धें में लग जाय तो हमें कपड़े के लिए अन्य देशों को एक पैसा भी न देना पड़े।

शिव (हिसाब लगाकर) यार तुमने खूब हिसाब लगाया। इतने महत्वपूर्ण काम के लिए 50 लाख मनुष्यों की आवश्यकता है। मुझे अब तक यह अनुमान ही न था कि इतने कम आदमियों की मेहनत हमारी आवश्यकताओं को पूरी कर सकती हैं। चलों मैं भी तुम्हारी मदद करूँगा। अपने पत्र में घरेलू उद्योग-धन्धों का प्रचार करूँगा।'' 93

यहॉ पर प्रेमचंद देशवासियों को अपने सर्वेक्षण के आधार पर यह बताना चाहते हैं कि वैसे भी हमारे देश की जनसंख्या अधिक है, और इसमें अगर आधे लोग भी सूत कातना शुरू कर दे तो दो साल भर में हम इतना कपड़ा बना सकते हैं जो हमारे देश की जनता की मॉग है। जिससे विदेशी कपड़ो की आयात कम होगी और देश के वार्षिक खर्च में कटौती होगी। प्रेमचंद यहॉ पर देश की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के उद्देश्य से लोंगो को स्वदेशी कपडो को धारण करने के लिए अपील करते हैं।

3. होली का उपहार - 3

यह कहानी हिन्दी में अप्रैल 1931 में माधुरी नाम से प्रकाशित हुई। बाद में इसका संकलन कफन और प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियां-4 में किया गया।

वैसे तो यह कहानी सामान्य है। कहानी का नायक अमरकांत पहली बार सुसराल जाने वाला था और वह जाने की तैयारी कर रहा था। इस पर उसके मित्र मैकू ने पत्नी के लिए कोई उपहार ले जाने की ही सलाह दी। काफी देर तक दोनों मित्रों ने सोचने के बाद तय किया कि अमरकांत अपनी पत्नी के लिए विदेशी साड़ी ले जाएगा। वे दानो जानते थे कि हश्मी की दुकान पर पिकेटिंग चल रहा है पर मैकू की सलाह से अमरकांत पीछे वाली गली से स्वयंसेवकों से नजर चुराकर दुकान में घुसा और 20-25 मिनट में फिर नजर चुराकर फिर से साड़ी लेकर वापस तेजी से बाहर निकला। लेकिन अंधेरे में बुढ़िया से टकराने के कारण स्वयंसेवको ने उसे घेर लिया तथा उसकी साड़ी छीन ली और उसका मजाक उड़ाने लगे। देखते ही देखते काफी भीड़ जमा हो गई। सभी अमरकांत की खिंचाई करने लगे। उसी वक्त एक युवती ने सबको शांत किया और उसकी साड़ी उसे वापस दिलाई "युवती ने सरल भर्त्सना के भाव से कहा जन सम्पत्ति का लिहाज सभी को करना पड़ता हे, मगर आपने इस दुकान से कपड़े लिए ही क्यों ? जब देख रहें हैं कि हमारे ऊपर कितना अत्याचार हो रहा है, फिर भी आप न माने। जो लोग समझकर भी नहीं समझते, उन्हें कैसे कोई समझाये ! '' 94

यहाँ प्रेमचंद उन लोगों की तरफ इशारा करते हें जो पढ़े लिखे हैं तथा देश की आर्थिक सामाजिक स्थिति को जानते भी हैं, फिर भी अपना मोह विदेशी चीजों पर से नहीं हटाते और देशवासियों के बजाय विदेशियों का साथ देते हैं। अमरकांत को अपने कृत्य पर क्षोभ हुआ। उसने अपनी गलती अपनी पत्नी पर थोपी और उसे इसका दोषी बताया। उस युवती ने जब अमरकांत का पता पूछा जिससे वह उसकी पत्नी को समझा सके, उससे उस युवती को पता चला कि अमरकांत ही उसका पति है। अमरकांत ने उसके सामने ही साड़ी जला दी तथा अपने कृत्य का प्रायश्चित करने के लिए दूसरे दिन से स्वयंसेवकों के साथ हाश्मी की दुकान पर पिकेटिंग करने चला गया। वह होली का दिन था। उस दिन पुलिस की लाठी ने स्वयंसेवकों को गिरफ्तार किया, जिसमें अमरकांत पहला था, पुलिस जब उन्हें ले जा रही थी तभी उसकी पत्नी फूलों का हार अमरकांत के गले में डालकर अपने गर्व एवं आनन्द को व्यक्त कर रही थी। यह शत-प्रतिशत सही है कि औरत अगर चाहे तो आदमी को सही राह दिखा सकती है और अगर वह ठान ले तो अपनी जिद भी मनवा सकती है जिसका उदाहरण में आखिरी तोहफा में देखने को मिलता है।

4. आखिरी तोहफा

प्रस्तुत कहानी का प्रथम प्रकाशन उर्दू में अगस्त 1931 मासिक पत्रिका चन्दन में हुआ। हिन्दी में गुप्तधन-2 और प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियां-4 में भी इसका संकलन किया गया है।

इस कहानी में भी लेखक ने होली का उपहार कहानी की भाँति शुरुआत की है। अमरनाथ एक औरत को होली का उपहार देने के लिए चुपके से विदेशी साड़ी अंधेरे में खरीदता है और स्वयंसेवक उसे न देखे इसलिए अंधेरे में चुपके से वह भागता है । अंधेरे में वह एक बुढ़िया से टकराता है, जिससे एक स्वयंसेविका उसे पकड़ लेती है और उसके घर का पता पूँछती है और साड़ी लेकर उसके घर आने का वादा करती है। वैसे दोनों कहानी की कथावस्तु लगभग मिलती जुलती है फर्क सिर्फ इतना है कि इस कहानी में अमरनाथ साड़ी अपनी पत्नी के लिए न लेकर एक वेश्या मालती के लिए खरीदता है। उसकी शादी तो अभी हुई न थी । अमरनाथ मालती को समझा बुझाकर दूसरे दिन अपने घर लाता है और उस देवीजी को लेने के लिए समय पर उसी जगह जाता है। वह स्वयंसेविका मालती को वहाँ आने पर खूब समझाती हैं, उसे देशभक्ति का वासता भी देती है, मालती उसे न केवल भला बुरा कहती है बल्कि वह औरतों को जलील भी करती है। मालती कहती है "जमाने का रंग ही बदला जा रहा है, मैं क्या करूँगी और तुम क्या करोगे। तुम मर्दों ने औरतों को घर में इतनी बुरी तरह कैद किया कि आज वे रश्म-रिवाज, शर्म-हया को छोड़कर निकल आई हैं और कुछ दिनों में तुम लोगों की हुकूमत का खात्मा हुआ जाता है। विलायती और विदेशी तो दिखाने के लिए है, असल में यह आजादी की ख्वाहिश है, जो

तुम्हें हासिल है। तुम अगर दो चार शादियां कर सकते हो तो औरत क्यों न करे? सच्ची बात यह है, अगर आंखे हैं तो अब खोलकर देखो। मुझे वह आजादी नहीं चाहिए। यहॉ तो लाज ढोते हैं और मैं शर्म-हया को अपना सिंगार समझती हूॅं।'' 95

इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि औरत ही औरत की दुश्मन होती है। जितना एक आदमी औरत को जलील नहीं करता उससे ज्यादा एक औरत जलील कर सकती है। मालती ने देवीजी के हाथों से विदेशी साड़ी छीन ली। इतनी बदनामी के बाद वह देवी अपना सा मुॅंह लेकर वापस लौट गई। अमरनाथ ने भी जब साड़ी मॉंगी तो उसने साड़ी न दी। अमरनाथ को अपनी गलती का एहसास हुआ और उसने मालती को बताया कि यह उसका आखिरी तोहफा है।

प्रेमचंद यह बताना चाहते है कि नारी सहज स्वभाव होती है। वह हठीली भी होती है अगर वह चाहे तो पत्थर दिल भी पिघला सकती है।

5. तावान - 3

इस कहानी का प्रथम प्रकाशन केवल हिन्दी में सितम्बर 1931 में मासिक पत्रिका हंस में हुआ और बाद में मानसरोवर -भाग-1 और प्रेमचंद की सम्पूर्ण काहनियॉं -4 में भी इसका संकलन हुआ।

कहानी के माध्यम से उन व्यापारियों की दुर्दशा को बताया गया है कि जिन्होंने पतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर तो कर दिया था कि वे विदेशी कपड़ों को नहीं बेंचेगें, पर इसके कारण उनके घर की हालत खराब होती गई इसका कारण था कि आमदनी बिल्कुल बंद हो गई। छकौड़ी भी विदेशी कपड़ों का व्यापारी था। पहले वह सम्पन्न था, पर जबसे उसने विदेशी कपड़ों को बेचना बंद किया, तब से उसके घर की हालत बिगड़ गई। घर में मां स्त्री और पांच बच्चे खाने वाले थे। मां बिस्तर पर पड़ी थी और औरत को असाध्य बिमारी ने घेर लिया था। स्त्री के इलाज में घर की सारी चीजें यहॉं तक कि सारे गहनें भी बिक गये। छकौड़ी को मजबूरी वश दुकान खोलकर विदेशी चीजों को बेचना पड़ा पर कांग्रेस वालों को पता चला तो उन्होंने न केवल छकौडी की दुकान की पिकेटिंग किया बल्कि उसे भला-बुरा भी कहा। छकौड़ी ने पुलिस की धमकी दी तो उन्होंने उस पर 101 रूपये का तावान लगाया। दुकान बंद होने पर दो तीन दिन छकौड़ी घर पर रहा, पर स्त्री के इलाज और दाने पानी के लिए वह दुकान का माल घर पर बेचेने लगा। जिस पर स्वयंसेवकों ने उसके घर पर भी पिकेटिंग कर दी। अब तो उसके परिवार की हालत और बिगड़ने लगी। पत्नी ने कहा कि वह कांग्रेस के सामने जाकर अपनी हालत के बारे में बताए और हो सके तो उन्हीं से नौकरी मॉंगे। वह कांग्रेस के आफिस जाता है तथा उनके प्रधान के सामने अपनी हालत को बताता है पर वे मानने के लिए तैयार नहीं होते। जब कांग्रेस का नेता कहता है कि यह उसका एक

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

नया रास्ता है तावान से बचने के लिए! तभी छकौड़ी उदण्ड होकर कहता है "तो यह कहिए कि आप देश सेवा नहीं कर रहें हैं, गरीबो का खून चूस रहें हैं। पुलिसवाले कानूनी पहलू से लेते हैं, आप गैरकानूनी पहलू से लेते हैं। नतीजा एक ही है। आप भी अपमान करते हैं, वह भी अपमान करते हैं। मैं कसम खा रहा हूँ कि मेरे घर में खाने के लिए दाना भी नहीं है, मेरी स्त्री खाट पर पड़ी -पड़ी मर रही है। फिर भी आपको विश्वास नहीं आता तो आप मुझे कांग्रेस का काम करने के लिए नौकर रख लीजिए। पच्चीस रूपये महीने दीजिएगा। इससे ज्यादा अपनी गरीबी का और क्या प्रमाण दूँ। अगर मेरा काम संतोष के लायक न हो , तो एक महीने के बाद में मुझे निकाल दीजिएगा। यह समझ लीजिए कि जब मैं आपकी गुलामी करने को तैयार हुआ हूँ, तो इसलिए कि मुझे कोई दूसरा आधार नही है। हम व्यापारी लोग ; अपना बस चलते किसी की नौकरी नही करते। जमाना बिगड़ा हुआ है। नही तो एक सौ एक रूपये के लिए इतना हाथ-पॉव न जोड़ता।'' 96

इस प्रकार कहानी के माध्यम से प्रेमचंद ने न केवल कांग्रेस का साथ दिया है, बल्कि उस समय के समर्थकों की मन:सिथति का भी चित्रण किया है। जब लोग प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर करके दुकान बंद करते हैं तब से उनकी स्थिति बद से बदतर हो जाती हैं। भारतीय प्रजा पहले से ही गरीब थी और पिकेटिंग के बाद तो पता नहीं कितने परिवारों की हालत खराब हो गई। लोगों को काम चाहिए था, लेकिन काम मिलना मुश्किल था। ऊपर से घर की जिम्मेदारी। छकौड़ी को भी यही चिन्ता थी। कंग्रेस कमेटी के प्रधान भी एक तरीके से सही कर रहे थे क्योंकि वह छकौड़ी का तावान माफ करते तो उनके जैसे कितने ही लोग और विदेशी कपड़े बेचना शुरू कर देते। जब छकौड़ी की पत्नी को इस बात का पता चला तो उसने छकौड़ी से साफ कह दिया कि वह विदेशी कपड़ा न बेचकर स्वदेशी कपड़ों की दुकान खोलेगा, चाहे वह भूखें ही क्यों न मरे।

यहॉ प्रेमचंद एक औरत की दृढ़ता को दिखाते हैं। यह भी सत्य है कि प्रतिज्ञा पत्र ने काफी लोगों को बेकार कर दिया पर कुछ समय की इस बेकारी और दर्द, पीड़ा के बाद आज हमारा देश न केवल आजाद है बल्कि हर व्यक्ति अपने हिसाब से अपने देश की प्रगति के बारे में काम करने के लिए स्वतंत्र है तथा भारत को सर्वोच्च्च बनाने में सहायता कर सकता है।

3. प्रेमचन्द की कहानियों की भाषा शैली

प्रेमचन्द के पास जहॉ चेतना सम्पन्न दृष्टि है, अनुभव जनित यथार्थ है और संवेदना है, वहॉ भाषा खुद एक शक्ति बन जाती है और जनजीवन से जुड़े हुए रूप में प्रस्तुत होती है। प्रेमचंद पूर्व साहित्य में जो कृत्रिम भाषा लिखी जाती थी, उसे प्रथमत: प्रेमचंद ने सहजता प्रदान की। प्रेमचंद के पूर्ववर्ती

साहित्यकारों ने हिन्दी के स्थान पर संस्कृत भाषा के प्रभाव के कारण हिन्दी का संस्कृत मिश्रित शैली में उपयोग किया करते थे। जिससे साधारण पाठक के लिए यह साहित्य एक दीवार सा खड़ा हुआ था। वहीं उर्दू से प्रभावित होकर उस भाषा का ज्यादा मिश्रण होने के कारण वह बिल्कुल अरबी, फारसी सी लगती थी। प्रेमचन्द ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। 'उन्होंने हिन्दी को नया रूप प्रदान किया। हिन्दुस्तानी का प्रयोग कर जन-साधारण के सम्मुख अपने साहित्य को प्रस्तुत किया। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए गांधीजी का सुझाव यह था कि हिन्दुस्तानी का प्रयोग हो। इस सुझाव को कार्यान्वित करने का श्रेय प्रेमचंद को ही मिलता है। उनका यह भाषा प्रयोग ऐसा दिखाई देता है, जैसे कि कोई चतुर सुनार अंगूठी में हीरे को समाविष्ट कर देता हैं।

प्रेमचंद ने गद्य की विविध शैलियों का प्रयोग किया है। भाव तथा सन्निवेश के अनुरूप अलंकृत शैली का तथा कहीं-कहीं लोकोक्तियों तथा मुहावरों का तॉता हमें उनकी शैली में दिखाई देता है। कहीं-कहीं पत्र शैली का भी प्रयोग किया है। उनकी कृतियों में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग बहुत कम हुआ है। विषय को रोचक बनाने के लिए पृष्ठभूमि के रूप में वेश-भूषा का वर्णन हुआ है। प्रेमचंद की गद्य शैली इतनी रोचक है कि उनका अनुकरण हो ही नहीं सकता। बहुत कम लोगों ने इस शैली का अनुकरण करने का असफल प्रयत्न किया। प्रेमचंद एक जनवादी कलाकार थे। अत: जन भाषा का सुंदर प्रयोग करने के कारण पाठक को भी कोई कष्ट महसूस नहीं होता। यही उनकी महत्वपूर्ण देन है।

डॉ. एम विमला का मानना है कि "प्रेमचंद की कहानियों की भाषा सरल, सजीव एवं सरस है। उनकी भाषा बहुत ही प्रभावपूर्ण लगती है। प्रेमचंद प्रथमत: उर्दू के लेखक थे। अत: उनकी भाषा पर उर्दू का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उनकी भाषा में हिन्दी और उर्दू का सुमधुर सम्मिश्रण है जिसे हिन्दुस्तानी से संबंधित किया जाता है। यही नहीं, संस्कृत भाषा की झलक भी दिखती है। प्रेमचंद की भाषा की विशेषता यह है कि वह पात्र तथा परिचय के अनुरूप बदल जाती है। उनकी भाषा की और एक विशेषता यह है कि भावुक प्रसंगों में वह काव्यात्मक बनती जाती है।" 97

प्रेमचंद की भाषा के सौन्दर्य के साथ ही साहित्यक रचना में सरस, सुमधुर सजीव वर्णन शैली भी सहज रूप में आ जाती है। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रेमचंद का साहित्य है। प्रेमचंद ने कई स्थलों पर व्यंग्य का प्रयोग किया है। उनकी शैली में स्वाभाविकता और प्रवाहमयता का संयोजन हुआ है। लोकोक्तियों का भी उचित प्रयोग हुआ है, जो अन्य कलाकारों में प्रज्ञपत होना मुश्किल है। इसके साथ ही प्रमुख-सूक्तियों का भी उपयोग किया गया है। प्रेमचंद अपने कहानी साहित्य में भावों का गम्भीर चिन्तन प्रस्तुत करते है। साथ ही साथ अपने विचारों को सललित, सरसमय, सजीव भाषा से अलंकृत करते हैं। इस

भाषा के साथ ही उनकी शैली भी सरस प्रवाहमय बन गई है। इस रूप में उनकी कहानी-कला, हिन्दी कहानी साहित्य को नवीन दिशा प्रदान करने में सफल हुई हैं। इसी बारे में डॉ. सुशीलकुमार फुल्ल का भी मानना है कि "कहानी के रचनाविधान को निरन्तरता व कथोपकथन की निश्चित व संभावित भूमिका रहती है। सभक्त संवादों से रहित कहानी मौन व अधूरी रहती है, सार्थकता की मंजिल तक नहीं पहुँच पाती, लेकिन प्रेमचंद की कहानियों में कहानीकला का श्रृंगार, संवादों की पात्रानुकूल सार्थकता कहानी की आत्मा बन जाती है, जो हम उनके साहित्य में सर्वत्र देख सकते हैं। कथ्य को सजीव, रोचक, विकसित करने पात्रों के अन्तःकरण के आलोड़न-विलोड़न को दर्शाने तथा देशकाल वातावरण को प्रभावी रूप से अंकित करने में संवाद सक्षम हैं। इसलिए वे शिक्षित-अशिक्षित, परिष्कृत, देशी-विदेशी, ग्रामीण-आंचलिक, लोकभाषा की स्थानीय बोलियों की रंग-बिरंगी छाप से पुष्ट है सन्तुलित है। इसमें पर्याप्त गंभीरता है जैसे अलग हो जाने से बच्चे तो अलग नहीं हो गये। (अलग्योझा)''98

प्रेमचंदजी ने कहानियों में दोषपूर्ण प्रणाली से बचने के लिए पात्रों के मध्य छोटे-छोटे संक्षिप्त, अर्थगर्भित वाक्यों से आपसी वार्तालाप विकसित करने में कामयाब हुए है। जिसमें संवादों का गठन मंजा हुआ, चुस्त, भाव-प्रवण तथा अर्थ गांभीर्य से युक्त है। इनमें रस संचार की अद्‌भुत शक्ति है। मानव-चरित्र से सुपरिचित प्रेमचंद मनोवृत्ति व स्वाभावानुकूल संवादों का चयन करते हैं। प्रसंगानुकूल स्वाभाविक व सहज व्यक्त हुए है, विशेष रूप से व्यंग्यात्मक संवादों के नश्तर समाज की नसों में व्याप्त गंदे बदबूदार मवाद को निकालने के लिए चीरा लगाने का काम देते हैं, किसी भी स्थल पर व्यंग्य अर्थहीन नहीं हुआ, जैसे-जैसे प्रेमचंद की कला में परिपक्वता आती गई, नश्तर और तेज व उपयोगी होते इससे संवादों में ओजपूर्ण व प्रखरता आई, जैसा कि 'शतरंज के खिलाड़ी' में 'कला-कला के लिए' मनोवृत्ति पर तीखा व्यंग्य है। तथा 'कफन' में घीसू व माधव का परस्पर वार्तालाप नाटकीयता तथा व्यंग्य प्रहारों से ओत-प्रोत है।

इसी सन्दर्भ में शिवकुमार मिश्र कहते हैं कि 'प्रेमचंद की कहानियों के रचना शिल्प की एक अहम विशेषता उनकी भाषा है। जिस सादगी तथा सरलता की बात हमने उनके रचना शिल्प के बारे में की है, वह सरल और सुबोध है, व्यंजक भी है, पारदर्शी भी। उसमें सादगी के भीतर काव्यत्व भी ऐसा है जो आनायास साध्य नहीं होता, उनकी भाषा के सहज प्रवाह के भीतर से उजागर होने वाला है। कम रचनाकारों की भाषा में ऐसा प्रवाह रवानी, स्पष्टता और व्यंजकता मिलेगी जो प्रेमचंद की कहानियों की भाषा में है। उनकी भाषा बहते पानी की तरह निर्मल है, अपनी सादगी में सुन्दर और नितांत संप्रेषणीय है। वह अनुभवों की गहराइयों से उपजी भाषा है। जब रचनाकार के मन में कहीं कोई गांठ या पेंच नहीं हैं, जीवनगत यथार्थ के पारदर्शी अनुभव है तो उनकी अभिव्यक्ति भी परिदर्शी बिना गांठ ही होगी। भाषा

उनकी उबाऊ और गुट्ठिल होती है जिनके मन में उलझाव है। जब मन में निरभ्र जीवन के ठेठ अनुभव है तो भाषा भी वैसी ही सरल और प्रवाहमयी होगी। ये प्रेमचंद के अनुभव ही हैं जो उनकी भाषा में गुंथकर सूक्तियाँ बनें हैं। ये वे सूक्तियाँ हैं जिनमें जीवन का सत्य बोलता है। ऐसी सूक्तियों की एक बड़ी विपुल राशि प्रेमचंद की कहानियों में हैं, जो अलग से विचारणीय है। प्रवाह, सरलता, चित्रमयता, व्यंजकता और सारगर्भिता प्रेमचंद की रचनात्मकता भाषा के वे गुण हैं जो उनकी रचनाओं को लंबा आयुष्य देते हैं।'' 99

इस तरह हम यह कह सकते हैं कि प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जो आम इन्सान भी समझ व पढ़ सके। उनकी भाषा पात्रानुकूल, भावमय एवं दिल को छू लेने वाली है। प्रेमचंद जी ने समाज की बुनियादी 'भाषा' को मानकर भाषा को साधन बनाकर पाठक यानी साध्य तक अपनी बात को पहुँचाने का प्रयत्न किया है।

सन्दर्भ- सूची

1. प्रेमचंद एक विवेचन- डॉ. इन्द्रनाथ मदान, पृ. - 123
2. कहानीकार प्रेमचंद रचनादृष्टि और शिल्प - शिवकुमार मिश्र , पृ0 - 40
3. प्रेमचंद भारतीय साहित्य सन्दर्भ - डॉ. निर्मला जैन, पृ0 - 51
4. प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ - डॉ. एम. विमला, पृ0 - 91
5. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 306
6. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा2, पृ. - 309
7. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 310
8. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ.. - 135-36
9. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 138
10. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 144
11. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 144
12. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-2 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 200
13. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-2 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 200
14. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-3 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 263-264
15. प्रेमचंद साहित्य में दलित चेतना - डा. बलवन्त साधू जाधव, पृ. - 116
16. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 288
17. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 290
18. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 291
19. प्रिमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-4 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 327
20. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-4 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ.- 327
21. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-4 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 328
22. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-4 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 333
23. प्रेमचंद भारतीय साहित्य: संदर्भ- डॉ. निर्मला जैन - पृ. - 47-48
24. कहानीकार प्रेमचंद- डॉ. नूरजहॉं, पृ. - 85
25. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-2 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 391
26. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-2 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 396

27. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-3 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 345
28. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-3 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 346
29. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-3 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 161
30. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-3 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 162
31. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-3 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 162
32. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-3 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 166
33. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-5 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 58
34. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-5 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 60
35. प्रेमचंद और गॉंधीवाद- डॉ. रामदीन गुप्त, पृ. - 302
36. प्रेमचंद और भारतीय किसान-डॉ. रामवृक्ष, पृ.- 159
37. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-5 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 69
38. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-5 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 387
39. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-5 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 389
40. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 283
41. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-2 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 354
42. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-2 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 354
43. कहानीकार प्रेमचंद रचनादृष्टि और शिल्प - शिवकुमार मिश्र, पृ. - 97
44. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. -108
45. प्रेमचंद भारतीय साहित्य: संदर्भ -डॉ. निर्मला जैन, पृ. -45
46. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 113
47. कहानीकार प्रेमचंद- रचनादृष्टि और रचना शिल्प- शिवकुमार मिश्र, पृ. -98
48. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-4 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 261
49. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-4 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. 265
50. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-4 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 261
51. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 297
52. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉं-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 297
53. प्रेमचंद और गॉंधीवाद- डॉ. रामदीन गुप्त, पृ. - 287-88

54. प्रेमचंद और गाँधीवाद- डॉ. रामदीन गुप्त, पृ. - 288
55. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-2 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 47
56. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-4 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 173
57. कहानीकार प्रेमचंद-रचनादृष्टि और रचना शिल्प-शिवकुमार मिश्र, पृ.-127-28
58. कहानीकार प्रेमचंद- रचनादृष्टि और रचना शिल्प- शिवकुमार मिश्र, पृ. - 125
59. प्रेमचंद साहित्य में दलित चेतना- डॉ. बलवन्त साधू जाधव, पृ. - 49
60. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-2 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. -178
61. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-2 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 179
62. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 421
63. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 421
64. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 422
65. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-1 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 422
66. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-2 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 236
67. कहानीकार प्रेमचंद- डॉ. कुमारी नूरजहाँ, पृ. - 46
68. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-2 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 238
69. प्रेमचंद साहित्य में दलित चेतना- डॉ. बलवन्त साधू जाधव, पृ. -113
70. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-2 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 261
71. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-3 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 174
72. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-3 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 338
73. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-3 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. -338
74. प्रेमचंद के घर में - शिवरानी देवी, पृ. - 128
75. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-4 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 357
76. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-4 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 358
77. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-4 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 359
78. प्रेमचंद साहित्य में दलित चेतना- डॉ. बलवन्त साधू जाधव, पृ. -118
79. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-4 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 359-360
80. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियाँ-4 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 364

81. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉ-4 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 367
82. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉ-4 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 380
83. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉ-4 - कान्ती प्रसाद शर्मा, पृ. - 381
84. हिन्दी पत्रकारिता: प्रेमचंद और हंस-डॉ. रत्नाकर पाण्डेय, पृ.-127-128
85. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉ-2, कान्तीप्रसाद शर्मा, पृ.-272
86. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉ-2, कान्तीप्रसाद शर्मा, पृ.-275
87. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉ-3, कान्तीप्रसाद शर्मा, पृ.-105
88. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉ-5, कान्तीप्रसाद शर्मा, पृ.-472
89. प्रेमचंद और गांधीवाद-रामदीन गुप्त, पृ.-124
90. प्रेमचंद और गांधीवाद-रामदीन गुप्त, पृ.-124-125
91. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉ-2, कान्तीप्रसाद शर्मा, पृ.-319
92. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉ-2, कान्तीप्रसाद शर्मा, पृ.-333
93. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉ-2, कान्तीप्रसाद शर्मा, पृ.-290
94. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉ-4, कान्तीप्रसाद शर्मा, पृ.-483
95. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉ-4, कान्तीप्रसाद शर्मा, पृ.-509
96. प्रेमचंद सम्पूर्ण कहानियॉ-5, कान्तीप्रसाद शर्मा, पृ.-513-514